अध्याय 1

विषय प्रवेश

(Introduction)

■ 1. अंकेक्षण का अर्थ (Meaning of Auditing)

अंकेक्षण का आशय किसी संस्था की लेखांकन संबंधी पुस्तकों एवं उससे सम्बद्ध प्रपत्रों की जांच करना है जिससे इनकी सत्यता, पूर्णता एवं नियमानुकुलता का सही ज्ञान हो सके। यह जांच एक निष्पक्ष एवं योग्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणकों, प्रपत्रों एवं सूचनाओं तथा स्पष्टीकरणों की सहायता से की जाती है। जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने शरीर की जांच किसी डॉक्टर से कराता है तथा डाक्टर संपूर्ण जांच के बाद शरीर की स्थिति पर अपना प्रमाण-पत्र (रिपोर्ट) देता है कि शरीर स्वस्थ है या नहीं; यदि नहीं तो उसमें क्या दोष (बीमारी) है। ठीक इसी प्रकार एक व्यापारी अपनी लेखा-पुस्तकों की जांच एक लेखा पुस्तकों के डॉक्टर (अंकेक्षक) से कराता है जो पूरी जांच के बाद यह रिपोर्ट देता है कि उसकी लेखा-पुस्तकें व्यापार की सत्य एवं उचित स्थिति प्रकट करती है अथवा नहीं; और यदि नहीं तो उनमें क्या त्रुटियां, कमियां अथवा दोष हैं।

■ 2. अंकेक्षण की उत्पत्ति एवं विकास (Origin and Development of Auditing)

अंग्रेजी भाषा का शब्द आडिटिंग (Auditing) जिसका हिन्दी अनुवाद अंकेक्षण है वास्तव में लेटिन भाषा के शब्द 'ऑडायर' से बना है, जिसका अर्थ है 'सुनना' (To hear)। प्राचीन ग्रीक तथा रोम राज्यों में राजकीय कोषों का हिसाब-किताब रखने के लिए **लेखापालों** (Accountants) की नियुक्ति की जाती थी। ये लेखापाल अपने हिसाब किताब की पुष्टि करने के लिए किसी अनुभवी न्यायधीश के पास जाते थे और अपने लेखों को पढ़कर सुनाते थे। ये न्यायधीश उस हिसाब-किताब के विवरण को सुनकर अपना निर्णय देते थे कि लेखे शुद्ध हैं या नहीं। इस प्रकार न्यायधीश ही अंकेक्षक कहलाते थे। अत: प्राचीन काल में अंकेक्षण कार्य केवल सुनने से संबंध रखता था।

वैज्ञानिक ढंग से हिसाब-किताब रखने की प्रणाली का जन्म सन् 1494 में हुआ। इस प्रणाली के जन्मदाता **ल्यूका पेसिआलो** (Luca Pacialo) ने **दोहरा लेखा प्रणाली** (Double Entry System) पर अपना एक लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने अंकेक्षक के कर्त्तव्य एवं दायित्व का भी उल्लेख किया। दोहरा लेखा प्रणाली धीरे-धीरे व्यापारिक संस्थाओं में प्रसिद्ध होती गई, लेकिन अंकेक्षण के क्षेत्र में सर्वप्रथम क्रान्ति 1844 में आई जबकि इंग्लैंड के कम्पनी विधान द्वारा कम्पनियों के लिए **चिट्ठा** (Balance Sheet) बनाने और उसका अंकेक्षण कराने को वैधानिक मान्यता प्राप्त हुई। प्रारंभ में कम्पनी अपने सदस्यों में से ही किसी व्यक्ति को अंकेक्षक के रूप में नियुक्त कर देती थी जिसके लिए किसी विशेष अंकेक्षण योग्यता की आवश्यकता नहीं होती थी। ऐसी दशा में वह व्यक्ति अपने कार्य में **लेखापालों** (Accountants) की सहायता लेता था। इससे यह आवश्यकता अनुभव की गई कि अंकेक्षक एक ऐसा व्यक्ति हो जिसको कि हिसाब-किताब के कार्य की पूरी जानकारी हो। इसी बात को सोचते हुए इंग्लैंड में 11 मई सन् 1880 को **'चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स संस्थान'** (Institute of Chartered Accountants) की स्थापना हुई जिसका कार्य **कुशल लेखापालों** (Qualified Accountants) अथवा योग्य अंकेक्षकों (Qualied Auditors) को तैयार करना था।

भारत में अंकेक्षण के इतिहास का प्रारंभ 1 अप्रैल 1914 से माना जाता है जब से **भारतीय कम्पनी अधिनियम** (Indian Companies Act) 1913 में लागू हुआ। इस अधिनियम द्वारा प्रत्येक कम्पनी के लिए उसके वार्षिक खातों का अंकेक्षण कराना अनिवार्य कर दिया गया और अंकेक्षक के लिए आवश्यक योग्यताओं का स्पष्ट उल्लेख भी किया गया। साथ ही सभी राज्य सरकारों को यह अधिकार भी दे दिया गया कि वह ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें दोहरा लेखा प्रणाली का समुचित ज्ञान हो, अंकेक्षक होने का प्रमाण-पत्र दे

एसोसिएशन आफ एकाउन्टेन्ट्स एण्ड ऑडीटर्स से प्रमाण-पत्र प्राप्त किया सकती है। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति भी जिन्होंने ब्रिटेन की हो भारत में अंकेक्षक के रूप में नियुक्ति के योग्य घोषित किए गए। प्रान्तीय सरकारों में सबसे पहले बम्बई की सरकार ने **लेखांकन का सरकारी डिप्लोमा** (Government Diploma in Accountancy or G.D.A.) देने की व्यवस्था की। यह डिप्लोमा अंकेक्षक की नियुक्ति के लिए पर्याप्त योग्यता समझी जाती थी तथा यह डिप्लोमा प्राप्त व्यक्ति भारत के किसी भी राज्य में अंकेक्षक के रूप में कार्य कर सकता था।

सन् 1932 तक योग्य अंकेक्षक तैयार करना राज्य सरकारों का दायित्व था। तत्पश्चात् केंद्रीय सरकार ने इस ओर ध्यान दिया और इसके लिए **ऑडीटर्स सर्टीफिकेट रूल्स** (Auditor's Certificate Rules) बनाए। इन नियमों के आधार पर रजिस्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स (Registered Accountants) अर्थात् (R.A.) की उपाधि दिए जाने की व्यवस्था की गई। इस उपाधि को प्राप्त करने के पश्चात् व्यक्ति अंकेक्षक के रूप में नियुक्त किया जा सकता था।

इसके पश्चात् **व्यावसायिक स्वतन्त्रता** (Professional Autonomy) की मांग उठी और सरकार ने 1 मई 1948 को एक लेखा विशेषज्ञ समिति की स्थापना की जिसने अपनी रिपोर्ट 4 जुलाई, 1948 को प्रस्तुत की तथा सिफारिश की कि देश में कानून के द्वारा 'इन्स्टीट्यूट ऑफ एकाउन्टेन्ट्स' की स्थापना की जाए।

सरकार ने इस समिति की सिफारिशों को स्वीकार करके सन् 1949 में चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स एक्ट 1949 पारित किया और इसके अनुसार **'दी इन्स्टीट्यूट आफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स ऑफ इण्डिया'** (The Institute of Chartered Accountants of India) की स्थापना नई दिल्ली में की गई। यह अधिनियम 1 जुलाई 1949 से लागू किया गया। इस अधिनियम के पास हो जाने से इस शिक्षा का संचालन, प्रबन्ध तथा नियन्त्रण केन्द्रीय सरकार से हटकर एक संस्था के हाथ में चला गया जो इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स के नाम से इसी अधिनियम के अंतर्गत बनायी गयी। अब अंकेक्षक बनने के लिए इस संस्था के नियमों का पालन करना पड़ता है और नियमानुसार परीक्षा देने के बाद ही कोई व्यक्ति इससे 'चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट' का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर सकता है।

इस इन्स्टीट्यूट का प्रबन्ध करने के लिए अलग से एक परिषद बनायी गयी है। इस परिषद के लिए इन्स्टीट्यूट के सदस्यों में चुने हुए 24 सदस्य (जो fellows में से ही होंगे) होते है। इनके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार द्वारा 6 व्यक्ति परिषद के लिए नामज़द किये जाते है। इन्स्टीट्यूट के संपूर्ण कार्य का संचालन इसी परिषद के द्वारा किया जाता है।

यह इन्स्टीट्यूट अपने सदस्यों का रजिस्टर रखती है। यह सदस्य दो प्रकार के होते हैं:

(i) **एसोसिएट्स** (Associates): ये इन्स्टीट्यूट के सदस्य होते हैं और इनका नाम इनके रजिस्टर में लिखा होता है। ये अपने नाम के आगे ए.सी. ए. (A.C.A. Associate of the Institute of Chartered Accountants) लिख सकते है।

(ii) **फैलोज** (Fellows): एसोसिएट सदस्य कुछ निर्धारित शर्तों का पालन करने (जैसे- कम-से-कम 5 वर्ष भारत में प्रैक्टिस करने, एक निर्धारित फीस देने, आदि) के पश्चात् इन्स्टीट्यूट के फैलो **सदस्य** (Fellows) बन जाते हैं और अपने नाम के आगे **एफ.सी.ए.** (F.C.A. Fellows of the Institute of Chartered Accountants) लिख सकते है।

1 अप्रैल, 1956 को नया कम्पनी अधिनियम लागू हो गया और कम्पनी अधिनियम, 1913 समाप्त कर दिया गया। इस नये अधिनियम के अनुसार अब सार्वजनिक कम्पनियों के साथ-साथ निजी कम्पनियों के खातों का अंकेक्षण भी अनिवार्य कर दिया गया। इसके अतिरिक्त अंकेक्षक के दायित्वों, कर्तव्यों एवं अधिकारों को भी बहुत अधिक विस्तृत कर दिया गया है। जहां तक अंकेक्षक की योग्यता का प्रश्न है, इनमे कोई नई बात नहीं हुई। अब केवल चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट ही अंकेक्षक बन सकता है।

3. अंकेक्षण की परिभाषा (Definition of Auditing)

प्राचीनकाल में व्यापारिक लेन-देन प्रायः नकद ही हुआ करते थे। अतः अंकेक्षण का कार्य केवल नकद लेन-देनों की जांच तक ही सीमित था। व्यापार के विस्तार के साथ-साथ व्यापारिक लेन-देनों का क्षेत्र विस्तृत होता गया और इसके साथ ही अंकेक्षण के कार्य की सीमा भी बढ़ती गई। अब अंकेक्षण का कार्य केवल रोकड़ के व्यवहारों की जांच ही नहीं है वरन् इसके अतिरिक्त एक संस्था की आर्थिक स्थिति

का सत्यापन करना है जो उसके लाभ-हानि खाते (Profit and Loss Account) तथा चिट्ठे (Balance Sheet) से प्रकट होती है। अत: अब अंकेक्षण का कार्य-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो चुका है।

विभिन्न विद्वानों ने अंकेक्षण की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। वास्तविकता यह है कि जैसे-जैसे अंकेक्षण का क्षेत्र विस्तृत होता गया उसकी परिभाषा का क्षेत्र भी विस्तृत होता चला गया। अंकेक्षण की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(A) **मॉण्टगोमरी** के अनुसार, **''अंकेक्षण एक संस्था की पुस्तकों तथा सौदों के लेखों की व्यवस्थित जांच है जिससे अंकेक्षक व्यापार के आर्थिक व्यवहारों का सत्यापन कर सके और उनके परिणामों के संबंध में अपनी रिपोर्ट दे सकें।''** (Auditing is a systematic examination of the books and records of a business or other organisation in order to ascertain or verify and to report upon, the facts regarding its financial operation and the result thereof.- **Montagomery**)

(B) **लारेन्स आर. डिक्सी** के अनुसार, **''अंकेक्षण हिसाब-किताब के लेखों की जांच है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि वे पूर्णतया एवं सही रूप से संबंधित सौदों के लिए किये गये हैं। साथ ही यह भी निश्चित हो सके कि सभी सौदे अधिकृत रूप से किये गये हैं।''** (An audit is an examination of accounting records undertaken with a view to establishing whether they correctly and completely reflect the transactions to which they relate. In some instances it may be necessary to ascertain whether the transactions themselves are supported by authority.- **Lawrence R. Dickcey**)

(C) **स्पाइसर एवं पैगलर** के अनुसार, **''किसी व्यापारिक संस्था की पुस्तकों, खातों तथा प्रमाणकों की ऐसी जांच को अंकेक्षण कहते हैं जिसके आधार पर अंकेक्षक यह सन्तोषपूर्वक कह सके कि उसको प्राप्त स्पष्टीकरण तथा सूचनाओं के आधार पर एवं जो पुस्तकों में प्रकट है उसके अनुसार, संस्था का चिट्ठा उचित रूप से बनाया गया है, जो व्यापार की सही एवं उचित आर्थिक स्थित को प्रकट करता है तथा लाभ-हानि खाता वित्तीय वर्ष के लाभ या हानि का सही व उचित चित्र प्रस्तुत करता है। यदि नहीं, तो किन-किन बातों से वह संतुष्ट नहीं है और क्यों।''** (An audit may be said to be such an examination of the books, accounts and vouchers of a business as will enable the auditor to satisfy that the Balance Sheet is properly drawn up so as to give a true and fair view of the state of affairs of the business, and whether the Profit and Loss Account gives a true and fair view of the profit or loss for the financial period according to the best of his information and the explanations given to him as shown by the books, and if not, in what respects he is not satisfied.- **Speicer and Pegler**)

(D) **जे.आर. बॉटलीबॉय** के अनुसार, **''अंकेक्षण किसी व्यापार के हिसाब-किताब की पुस्तकों की एक ऐसी बुद्धिमत्तापूर्ण एवं आलोचनात्मक जांच है जो उन प्रपत्रों एवं प्रमाणकों की सहायता से की जाती है जिनसे वे तैयार किए गए हैं। इस जांच का उद्देश्य यह मालूम करना होता है कि लाभ-हानि खाते में दिखाया गया एक निश्चित अवधि का कार्यफल व चिट्ठे में दिखाई गई व्यापार की वित्तीय स्थिति उन व्यक्तियों द्वारा सत्यता से निर्धारित व प्रदर्शित की गई है अथवा नहीं जिन्होंने इन्हें तैयार किया है।''** (Auditing may be defined as an intelligent and a critical scrutiny of the books of accounts of a business with documents and vouchers from which they are written up, for the purpose of ascertaining whether the working result for a particular period, as shown by the profit and loss account, as also the exact financial condition of that business as reflected in the balance sheet, are truly determined and presented by those responsible for their compilation.- **J.R. Batliboi**)

अंकेक्षण की उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् अंकेक्षण की एक उचित एवं पूर्ण परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है:

अंकेक्षण किसी व्यापारिक संस्था की हिसाब-किताब की पुस्तकों की विशिष्ट तथा विवेचनात्मक जांच है, जो एक योग्य एवं निष्पक्ष व्यक्ति द्वारा, संस्था से प्राप्त **प्रमाणकों** (Vouchers), **प्रपत्रों** (Documents), **सूचनाओं** (Informations) तथा **स्पष्टीकरणों** (explanations) की सहायता से की जाती है, जिससे कि वह एक निश्चित अवधि के लिए बनाए हुए हिसाब-किताब के संबंध में यह रिपोर्ट दे सके कि:

(क) सभी लेखे नियमानुसार बनाये गये और पूर्ण हैं या नहीं,

(ख) चिट्ठा उस संस्था की आर्थिक स्थिति का ठीक-ठीक और सही दृश्य प्रस्तुत करता है या नहीं, तथा

(ग) लाभ-हानि खाता संस्था के लाभ तथा हानि की वास्तविक स्थिति को प्रकट करता है या नहीं।

4. परिभाषा की विवेचना अथवा अंकेक्षण के तत्व (Interpretation of Definition or Elements of Auditing)

उपरोक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने पर अंकेक्षण के निम्नलिखित प्रमुख तत्व स्पष्ट होते हैं:

(1) संस्था (Organisation or Institution): पहले केवल व्यापारिक संस्थाओं को ही अंकेक्षण के दृष्टिकोण से संस्था माना जाता था जैसा कि आर.जी. विलियम्स, बॉटलीबॉय तथा स्पाइसर एण्ड पैगलर इत्यादि ने अंकेक्षण को सिर्फ व्यवसाय की लेखा पुस्तकों की जांच ही बताया है। परन्तु आजकल अंकेक्षण का क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है। अब ऐसी संस्थाओं का भी अंकेक्षण किया जाने लगा है जो कोई व्यापार नहीं करती जैसे- औषधालय, विश्वविद्यालय, क्लब आदि।

(2) स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष व्यक्ति (Independent and Impartial Person): अंकेक्षण का कार्य एक ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जिसका व्यापार अथवा संस्था से किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं होता। इस प्रकार वह अपना कार्य बिना किसी भेद-भाव के निष्पक्ष रूप से करता है।

(3) लेखा-पुस्तकें (Books of Accounts): अंकेक्षण में मुख्यत: लेखा-पुस्तकों की ही जांच की जाती है। किन्तु लेखा-पुस्तकों के साथ ही उन पुस्तकों की जांच भी की जाती है जो व्यापार व विधान से संबंधित होती हैं जैसे- अंश हस्तांतरण रजिस्टर आदि।

(4) जांच (Verification): अंकेक्षण में लेखा-पुस्तकों की जांच केवल उनकी गणितीय-शुद्धता जानने के लिए नहीं की जाती बल्कि ऐसी विशिष्ट एवं आलोचनात्मक जांच की जाती है जिसके परिणामस्वरूप इन लेखों की वास्तविकता, शुद्धता, पूर्णता तथा नियमानुकूलता का पता लग सके।

(5) अवधि (Period): अंकेक्षण में एक निश्चित अवधि से संबंधित लेखों की ही जांच की जाती है जो साधारणत: एक वित्तीय वर्ष (Financial Year) होती है। अंकेक्षक इस निश्चित अवधि के लिए बनाये गये लाभ-हानि खाते तथा चिट्ठे की जांच करके यह रिपोर्ट देता है कि उनमें प्रदर्शित संस्था की स्थिति **सत्य एवं उचित** (True and Fair) है अथवा नहीं।

(6) प्रमाणक एवं प्रपत्र (Vouchers and Documents): अंकेक्षण में जांच का मुख्य आधार प्रमाणक एवं प्रपत्र होते हैं। **पुस्तकों में कोई भी ऐसा व्यवहार** (Transaction) **नहीं लिखा जाना चाहिये जिसका प्रमाणक न हो** और न ही **कोई ऐसा प्रमाणक बचना चाहिये जिसका लेखा पुस्तकों में न हुआ हो।** प्राप्ति की रसीद, भुगतान की रसीद, प्रतिलिपि, बीजक, आदेश की प्रतिलिपि तथा अनुबन्ध-पत्र आदि प्रमाणकों के उदाहरण हैं।

(7) सूचना एवं स्पष्टीकरण (Information and Explanation): यद्यपि लेखा-पुस्तकों की जांच का आधार प्रमाणक ही होते हैं परन्तु फिर भी यदि अंकेक्षक प्रमाणकों से संतुष्ट नहीं हैं तो लेन-देनों का सत्यापन करने के लिए वह सूचनाएं एवं स्पष्टीकरण मांग सकता है।

(8) नियमानुकूल (According to Rules): अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में इस बात का प्रमाण-पत्र देना पड़ता है कि संस्था की लेखा-पुस्तकें संस्था से संबंधित विशेष अधिनयम के नियमानुकूल हैं अथवा नहीं; जैसे- कम्पनी अंकेक्षण में अंकेक्षक

को अपनी रिपोर्ट में इस बात का प्रमाण-पत्र देना पड़ता है कि कम्पनी का लाभ-हानि खाता तथा चिट्ठा कम्पनी अधिनियम 2013 की व्यवस्थाओं के अनुकूल है या नहीं।

(9) विज्ञान तथा कला (Science and Art): अंकेक्षण विज्ञान एवं कला दोनों है। विज्ञान तो इस प्रकार है कि अंकेक्षण के कुछ उद्देश्य होते है जिन्हें प्राप्त करना होता है और कला इसलिए है कि इसमें यह भी बताया जाता है कि उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए क्या-क्या करना चाहिए। इस प्रकार यह एक ओर 'विज्ञान' है तथा दूसरी ओर 'कला' है।

5. अंकेक्षण की आवश्यकता (Necessity of Auditing)

प्राचीनकाल में हिसाब-किताब रखने की प्रणाली अपूर्ण थी। उन दिनों व्यवसायिक संस्थाएँ छोटी-छोटी होती थी और उनके पास अधिक पूँजी न होने के कारण दैनिक लेन-देन भी कम होते थे। साधारणतया वे व्यक्ति जो पूँजी लगाते थे, संस्था के हिसाब-किताब रख लिया करते थे। अत: किसी बाहरी व्यक्ति के द्वारा हिसाब-किताब की जांच कराया जाना आवश्यक नहीं समझा जाता था।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रारंभ हुआ। यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में विकास एवं बैंकिंग सुविधाओं में वृद्धि ने व्यवसाय तथा विनियोजन के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया जिससे संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों का जन्म हुआ। कम्पनी संगठन में प्रबन्ध एवं स्वामित्व पृथक्-पृथक् हो गया। संयुक्त पूंजी कम्पनियों में अंशधारी कम्पनी में पूँजी विनियोजित करते हैं और ये ही कम्पनी के स्वामी होते हैं परन्तु ये अंशधारी एक विस्तृत क्षेत्र में फैले रहते हैं और व्यवसाय के वास्तविक-संचालन में हिस्सा नहीं लेते। ऐसी परिस्थितियों में उन्हें इस बात का विश्वास दिलाना आवश्यक है कि उनकी पूँजी सुरक्षित है। यही नहीं, उन्हें यह भी बताना होगा कि पूँजी का नियन्त्रण करने वाले प्रबन्धकों ने जो खाते प्रस्तुत किये हैं वे सत्य तथा ठीक हैं। अंशधारियों के लिए कम्पनी के खातों की स्वयं जांच करना संभव नहीं है। अत: वे एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति करते हैं जो उनकी ओर से खातों की जाँच कर सके।

अंकेक्षण का आशय किसी व्यापार के लेखों की गहन जांच करना है जिससे कि उनकी सत्यता एवं नियमानुकूलता का सही ज्ञान हो सके। एकाकी व्यापार तथा साझेदारी फर्म के हिसाब-किताब की जाच कराना वैधानिक दृष्टि से अनिवार्य नहीं है, परन्तु कम्पनी के खातों का अंकेक्षण वैधानिक दृष्टि से अनिवार्य है। कम्पनी के खातों के वैधानिक अंकेक्षण की पृष्ठभूमि में स्पष्ट धारणा यह है कि एकाकी व्यापार व साझेदारी फर्म में संस्था का स्वामित्व व प्रबन्ध एक ही होता है। अंकेक्षण में प्रबन्ध के द्वारा किये गये कार्यकलाप तथा लेखों की जांच स्वामी की ओर से करायी जाती है। इसके विपरीत कम्पनी में प्रबन्ध एवं स्वामित्व अलग-अलग होते हैं। कम्पनी के स्वामी अर्थात् अंशधारी अपने हितों के संरक्षण के लिए अंकेक्षक की नियुक्ति करते हैं तथा कम्पनी के कार्यों की जांच करवाकर अंकेक्षक से प्रमाण-पत्र प्राप्त करते हैं। वास्तव में उनके हित-संरक्षण के लिए ही कम्पनी के खातों के अंकेक्षण की अनिवार्यता की गयी है।

6. पुस्तपालन, लेखांकन, अंकेक्षण व अनुसंधान (Book-keeping, accountancy, Auditing and Investigation)

प्रारंभकाल में 'लेखाकर्म' एक विस्तृत शब्द माना जाता था। इसके निम्नलिखित तीन भाग थे और उनमें कोई अंतर नहीं समझा जाता था।

(क) व्यावहारिक भाग (Practical Aspect): यह सौदों को पुस्तकों में लिखने या **पुस्तपालन** से संबंधित था।

(ख) सैद्धान्तिक अथवा रचनात्मक भाग (Theoretical Aspect or Constructive Aspect): यह पुस्तपालन की जांच तथा अन्तिम खाते तैयार करने (लेखाकर्म) से संबंधित था;

(ग) आलोचनात्मक अथवा विश्लेषणात्मक भाग (Critical or Analytical Aspect): यह लेखाकर्म तथा अन्तिम-खातों की जांच-पड़ताल (अंकेक्षण) से संबंधित था। प्राय: लेखापाल ही इन तीनों कार्यों को कर लेता था।

व्यापार के बढ़ने के साथ-साथ व्यापारिक लेन-देनों में भी वृद्धि हुई जिससे इन तीनों पहलुओं को पृथक कर दिया गया और लेखा कार्य का व्यवहारिक पहलू **'पुस्तपालन'** (Book-Keeping), सैद्धान्तिक पहलू **'लेखांकन'** (Accountancy) तथा आलोचनात्मक पहलू **'अंकेक्षण'** (Auditing) कहलाने लगा।

पहले पुस्तपालन तथा लेखाकर्म के कार्यों में विशेष अंतर नहीं माना जाता था। लेखाकर्म के अंतर्गत ही पुस्तपालन का कार्य आ जाता था और एक ही मनुष्य दोनों कार्य कर लेता था। परन्तु आज के औद्योगिक युग में पुस्तपालन तथा लेखाकर्म दोनों पृथक कार्य हो गए हैं। साधारणतया निम्नलिखित कार्य पुस्तपालन, लेखाकर्म तथा अंकेक्षण तीनों के क्षेत्र में आ जाते हैं:

(क) प्रारंभिक कार्य—लेखा करना व शेष निकालना (Recording and Balancing)	1. जर्नल प्रविष्टियां करना (Journalising)। 2. इन प्रविष्टियों को खाताबही में ले जाना (Posting)। 3. खाताबही के भिन्न-भिन्न खातों का योग करना (Totalling)। 4. खातों का शेष निकालना (Balancing)।
(ख) सारांश तथा विश्लेषण (Summary and Analysis)	5. पुस्तपालक के कार्य की जांच करना। 6. तलपट (Trial Balance) बनाना। 7. माल खाता तथा लाभ-हानि खाता (Trading and Profit and Loss Account) बनाना। 8. चिट्ठा (Balance Sheet) तैयार करना। 9. भूल-सुधार (Rectification of Errors) तथा समायोजन के लेखे (Adjustment entries) करना।
(ग) जांच (Examination of Records)	10. लेखापाल (Accountant) के कार्य की जांच करना।

● 6.1 पुस्तपालन (Book-keeping)

पुस्तपालन व्यापारिक लेन-देनों को हिसाब की पुस्तकों में लिखने की कला है। इसका संबंध मुख्य रूप से प्रारंभिक लेखा बहियों तथा **खाताबही** (Ledger) से होता है। जैसे- व्यापारिक लेन-देनों को जर्नल और खाता बही में लिखना, उनका योग करना व उनका शेष निकालना आदि कार्य पुस्तपालन में सम्मिलित हैं। यह कार्य प्रायः **छोटे लिपिकों** (Junior Clerks) के द्वारा किया जाता है क्योंकि इसे करने के लिए लेखांकन के अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं पडती है। पश्चिमी देशों जैसे- अमेरिका, इंग्लैंड आदि में तो यह कार्य मशीनों द्वारा भी किया जाने लगा है।

● 6.2 लेखांकन या लेखाकर्म (Accountancy)

लेखाकन पुस्तपालन से अधिक व्यापक शब्द है। पुस्तपालन को लेखांकन का ही एक अंग माना जाता है। यह कहा जाता है कि ''**जहां पुस्तपालन का कार्य समाप्त होता है वहां से लेखांकन का कार्य आरंभ होता है।**'' (Accountancy begins where book-keeping ends)। इस कथन से स्पष्ट है कि पुस्तपालन द्वारा प्राप्त हुए तथ्यों का विश्लेषण लेखांकन में किया जाता है। इस प्रकार लेखांकन में प्रारंभिक पुस्तकों की जांच, तलपट, लाभ-हानि खाता तथा चिट्ठा तैयार करना तथा इससे संबंधित समायोजन व भूल सुधार के लेखे करने की क्रियाएं सम्मिलित हैं। यद्यपि लेखांकन का आधार पुस्तपालन ही है फिर भी लेखांकन का कार्य अधिक जिम्मेदारी, योग्यता एवं बुद्धिमता का है। अत: यह कार्य एक योग्य व सुशिक्षित व्यक्ति लेखापाल को दिया जाता है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि एक लेखापाल को चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट होना आवश्यक नहीं है। वह अपना कार्य करने के पश्चात् अंकेक्षण की भान्ति संस्था के मालिकों को कोई रिपोर्ट नहीं देता, यद्यपि समय-समय पर प्रबन्धकों को अपनी **लेखांकन रिपोर्ट** (Accounting Report) भेजता रहता है।

● 6.3 अंकेक्षण (Auditing)

अंकेक्षण का क्षेत्र वास्तव में वहां से प्रारंभ होता है जहां लेखाकर्म का कार्य समाप्त होता है। (Where Accountancy ends, Auditing begins)। अंकेक्षक अपना कार्य तभी शुरू करता है जबकि सब खाते तथा विवरण तैयार कर लिये गये हैं। अत: अंकेक्षण पुस्तपालन तथा लेखाकर्म दोनों से बिल्कुल भिन्न है। अंकेक्षण में लेखा-पुस्तकों की विवेचनात्मक जांच संबंधित प्रमाणकों, प्रपत्रों, सूचनाओं तथा स्पष्टीकरणों के आधार पर की जाती है। अंकेक्षण के पश्चात् अंकेक्षक को एक रिपोर्ट देनी होती है और यह स्पष्ट करना होता है कि संस्था का लाभ-हानि खाता तथा चिट्ठा उसकी स्थिति का ठीक-ठीक एवं सही रूप प्रस्तुत करता है या नहीं। स्मरण रहे एक अंकेक्षक को लेखाकर्म के सिद्धांतों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और उसका चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट होना आवश्यक है।

- **6.4 अनुसंधान (Investigation)**

अनुसंधान का आशय पूर्व-निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसी व्यापार के अन्तिम खातों, लेखा-पुस्तकों तथा अन्य मामलों की गहन जांच एवं निरीक्षण से है जो परिस्थिति विशेष, के अनुसार संस्था के स्वामी या अन्य पक्षों के द्वारा कराया जाता है। इस प्रकार की छान-बीन कुछ विशेष अवसरों पर होती है। जैसे- किसी व्यापार को क्रय करना, किसी फर्म में साझेदार बनाना, किसी को ऋण देना, किसी कम्पनी के अंश खरीदना आदि। अनुसंधान करते समय यह मान लिया जाता है कि पुस्तकों का अंकेक्षण पहले ही किया जा चुका है।

■ 7. पुस्तपालन एवं लेखाकर्म में अंतर (Difference between Book-keeping and Accountancy)

प्राचीन काल में पुस्तपालन एवं लेखांकन में कोई अंतर नहीं समझा जाता था दोनों ही शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची थे। किन्तु व्यापार के बढ़ने के साथ-साथ व्यापारिक लेन-देनों में वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप लेखा-विधि की मान्यताओं में भी परिवर्तन आया। अत: इस परिवर्तन के कारण पुस्तपालन एवं लेखाकर्म में अंतर माना जाने लगा। यह अंतर निम्न आधारों पर किया जाता है:

क्रम संख्या (S.No.)	अंतर का आधार (Basis of Difference)	पुस्तपालन (Book-keeping)	लेखाकर्म (Accountancy)
1.	लेन-देन (Transaction)	इसमें व्यापारिक लेन देनों को प्रारंभिक पुस्तकों में लिखते हैं, एवं इनकी खतौनी (Posting) खातों में करते हैं।	इसमें लेन-देनों की प्रारम्भिक पुस्तकों में की गई प्रविष्टियों तथा खातों में की गई खतौनी की जांच करते हैं।
2.	योग तथा शेष (Total and Balance)	इसमें जर्नल व खाता-बही का योग किया जाता है तथा विभिन्न खातों का शेष निकाला जाता है।	इसमें खातों के शेषों को तलपट में लिखा जाता है।
3.	अन्तिम खाते (Final Accounts)	अन्तिम खाते बनाना इसके कार्य-क्षेत्र में नहीं आता।	इसके अंतर्गत अन्तिम खाते (लाभ खाता व चिट्ठा) तैयार किए जाते हैं।
4.	भूल सुधार एवं समायोजन (Rectification of Error and Adjustment)	इसमें ये लेखे सम्मिलित नहीं होते हैं।	इसमें भूल सुधार एवं समायोजन लेखे किए जाते हैं।
5.	उत्तरदायित्व (Responsibility)	पुस्तपालन लेखाकर्म के कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं है।	लेखापाल को पुस्तपालक के कार्य के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है क्योंकि पुस्तपालन लेखाकर्म का ही एक भाग है।

6.	विशिष्ट ज्ञान व योग्यता (Specialised Knowledge and Ability)	यह कार्य छोटे कर्मचारियों को सौंपा जाता है तथा इसके लिए विशेष ज्ञान एवं योग्यता की आवश्यकता नहीं है। यह कार्य मशीनों द्वारा भी किया जा सकता है।	यह कार्य एक विशेष ज्ञान व योग्यता वाला व्यक्ति ही कर सकता है। यह कार्य मशीनों द्वारा नहीं किया जाता है।

■ 8. लेखाकर्म एवं अंकेक्षण में अंतर (Difference between Accountancy and Auditing)

साधारणतया लेखाकर्म और अंकेक्षण में निम्नलिखित अंतर हैं:

क्रम सं० (S. No.)	अंतर का आधार (Basis of Difference)	लेखाकर्म (Accountancy)	अंकेक्षण (Auditing)
1.	कार्य (Function)	लेखाकर्म में पुस्तपालन के कार्य की जांच करना, तलपट बनाना, अन्तिम खाते बनाना, भूल सुधार व समायोजन लेखे करना आदि इसके क्षेत्र में आते हैं।	इसके क्षेत्र में लेखाकर्म की जांच करना है, ताकि यह पता चल जाये कि लाभ-हानि खाता तथा चिट्ठा नियमानुकूल बनाये गये हैं या नहीं और इनके द्वारा दिखाया गया लाभ-हानि और आर्थिक स्थिति ठीक है या नहीं।
2.	उद्देश्य (Object)	लेखाकर्म का उद्देश्य व्यापारिक क्रियाओं के परिणाम की जानकारी हेतु लेखों का विश्लेषण करना तथा संस्था की वित्तीय स्थिति का पता लगाना है।	इसका उद्देश्य लेखों की सत्यता व औचित्य को प्रमाणित करना है।
3.	प्रारंभ (Beginning)	लेखाकर्म वहां शुरू होता है जहां पुस्तपालन समाप्त होता है।	अंकेक्षण का कार्य वहाँ से प्रारंभ होता है जहां लेखाकर्म समाप्त होता है।
4.	आधार (Basis)	लेखाकर्म अंकेक्षण पर आधारित नहीं है। अत: लेखाकर्म का अस्तित्व अंकेक्षण से स्वतन्त्र है।	अंकेक्षण पूर्ण रूप से लेखाकर्म पर आधारित है क्योंकि लेखाकर्म के बिना अंकेक्षण का कोई आस्तित्व ही नहीं है।
5.	नियम एवं सिद्धांत (Rules and Principles)	कुछ निश्चित एवं परंपरागत नियमों व सिद्धांतों के सहारे लेखाकर्म का कार्य संपन्न किया जाता है।	अंकेक्षण के कार्य में परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन किये जाते हैं। अंकेक्षक किन्हीं विशिष्ट नियमों से बंधा हुआ नहीं होता वरन् स्वतन्त्र होता है।

(2) **मेरीटाईम इन्श्योरेन्स कम्पनी लि. बनाम विलियम फोरच्यून एण्ड सन्स, 1931** (Maritime Insuran... Company Ltd., Vs. William Fortune & Sons 1931) के विवाद में वादी कम्पनी ने विलियम फोरच्यून ए... सन्स पर, जो चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट थे, 522 पौण्ड के हर्जाने का दावा किया था, क्योंकि उन्होंने वादी कम्पनी की वे... **हार्टल पूल** (West Hartal Pool) शाखा के खातों की सत्यता का प्रमाण-पत्र दिया था और वे एक कर्मचारी द्वारा कि... गए कपटों का पता नहीं लगा पाए थे। प्रतिवादी ने उत्तर में कहा कि इस शाखा के खातों में उन्होंने कोई लापरवाही नहीं ... और वे अंकेक्षक की तरह नियुक्त नहीं किये गये थे, उनकी नियुक्ति तो केवल यह देखने के लिए हुई थी कि कम्पनी ... कर्मचारियों द्वारा पुस्तकों से माहवारी लेखे ठीक-ठीक उतारे जाते हैं या नहीं। **जस्टिस रोचे** (Rouche) ने यह निर्णय दिया कि विलियम फोरच्यून एण्ड सन्स ने अंकेक्षक का कार्य नहीं किया, वे केवल लेखापाल की स्थिति में थे...

(3) **लीच बनाम स्टॉक्स और अन्य** (Leech Vs. Stocks and Others, 1937): लीच महोदय एक साझेदारी फर्म के सदस्य थे, जिसने सन् 1928 में स्टॉक्स एवं अन्य को कर-निर्धारण के उद्देश्य के लिए फर्म का लाभ-हानि खाता बनाने का आदेश दिया। उन्होंने सन् 1933 तक प्रतिवर्ष खाते उनके आदेशानुसार बनाये और फर्म के साझेदारों ने उन्हें स्वीकार किया। कभी कोई प्रश्न खातों के अंकेक्षण के बारे में नहीं उठा।

सन् 1934 मे फर्म के एक साझेदार की मृत्यु हो गयी और उसके स्थान पर एक नया साझेदार फर्म में आया जिसने फर्म के खातों का अंकेक्षण कराने पर जोर दिया। फलस्वरूप जांच की गई और यह पाया गया कि एक रोकड़िये ने पिछले कई वर्षों से किराये की रकम का गबन किया। श्री लीच ने स्टॉक्स एवं अन्य पर इस बात का आरोप लगाया कि उन्होंने खातों की सत्यता को प्रमाणित करने में लापरवाही की है। अपने बचाव में स्टॉक्स एवं अन्य ने कहा कि उनकी नियुक्त आयकर विभाग में लाभ-हानि विवरण तैयार कर प्रस्तुत करने हेतु हुई थी, अत: लेखों की जांच का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। दूसरे, सन् 1928 से लेकर 1933 तक कभी भी उनसे इस बात के बारे में शिकायत नहीं की गई। अत: इसमें उनका कोई दोष नहीं है। न्यायालय ने इस मामले में भी यही निर्णय दिया कि प्रतिवादी ने लेखापाल (Accountant) की हैसियत से कार्य किया है, अंकेक्षक की हैसियत से नहीं।

विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिए गये उपरोक्त निर्णयों से यह निष्कर्ष निकलता है कि: (1) अंकेक्षक की नियुक्ति यदि लेखापाल (Accountant) के रूप में की जाती है तो वह अंकेक्षक नहीं बल्कि लेखापाल ही होता है। (2) किसी उद्देश्य विशेष के लिए बनाए गए अन्तिम खाते यदि अंकेक्षक द्वारा ही बनाए जाते हैं तो भी अंकेक्षक दोषी नहीं है तथा वह अपने दायित्व से मुक्त रहता है।

अंकेक्षक तथा लेखापाल के अंतर को समझने में प्राय: व्यक्ति भूल करते हैं। यदि एक अंकेक्षक को निश्चित पुस्तकों के आधार पर खाते बनाने के लिए नियुक्त किया जाता है तो वह केवल एक योग्य लेखापाल की तरह ही कार्य करेगा। उसके बारे में यह सोचना कि चूंकि खाते एक अंकेक्षक द्वारा बनाए गए हैं इसलिए वह इनकी सत्यता के लिए अंकेक्षक की हैसियत से उत्तरदायी है, भूल है। ऐसी अवस्था में अंकेक्षकों को अपने बनाए हुए खातों पर हस्ताक्षर करते समय यह लिख देना चाहिए कि उन्होंने लेखापाल की तरह कार्य किया है, अंकेक्षक की तरह नहीं। हाईकोर्ट के **न्यायाधीश हन्ना** (Justice Hannae) ने लेखापाल व अंकेक्षक में अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि- 'लेखापाल प्राप्त जानकारी को यथावत् स्वीकार कर अपने विशेष ज्ञान की सहायता से उसे प्रदर्शित करता है जबकि अंकेक्षक प्राप्त सूचना को यथावत् प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं है और वास्तव में अंकेक्षक का प्रमुख कार्य इस बात का पता लगाना है कि प्रस्तुत सूचना सत्य है या नहीं।'

■ 9. अंकेक्षण एवं अनुसंधान में अंतर (Difference between Auditing and Accountancy)

क्रम संख्या (S.No.)	अंतर का आधार (Basis of Difference)	अंकेक्षण (Auditing)	अनुसंधान (Investigation)
1.	**उद्देश्य** (Object)	अंकेक्षण का उद्देश्य संस्था के खातों की पूर्णता, शुद्धता एवं नियमानुकूलता का पता लगाना है।	इसका उद्देश्य गहन कपट की जाच करना तथा कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गहन छानबीन करना है।

2.	अवधि (Terms)	इसमें व्यापार के एक वर्ष के लेखों की जांच की जाती है।	इसमें कई वर्षों के अंकेक्षित खातों की जांच की जाती है।
3.	किसकी ओर से (On whose behalf)	यह व्यापार के स्वामी की ओर के कराया जाता है।	यह प्राय: बाहरी व्यक्तियों की ओर से कराया जाता है। कभी-कभी व्यापार का स्वामी भी इसे करा लेता है।
4.	आवश्यकता (Neccessity)	अनेक संस्थाएं; जैसे- बीमा कम्पनी, बैंकिंग कम्पनी तथा सार्वजनिक व निजी कम्पनी का अंकेक्षण वैधानिक रूप से अनिवार्य है।	अनुसंधान कराना किसी भी दशा में वैधानिक रूप से अनुवार्य नहीं है। इसका कराया जाना पूर्णतया ऐच्छिक है।
5.	क्षेत्र (Scope)	इसका क्षेत्र सीमित है क्योंकि इसमें केवल हिसाब-किताब की पुस्तकों की जांच की जाती है।	इसका क्षेत्र विस्तृत है क्योंकि इसमें हिसाब-किताब के अतिरिक्त अन्य तत्वों की भी जांच की जाती है।
6.	योग्यता (Avoid)	एक अंकेक्षक का चार्टर्ड एकाउन्टैन्ट होना जरूरी है।	अनुसंधानकर्ता योग्य व अनुभवी लेखापाल भी हो सकता है।
7.	बारंभारता (Clashing)	यह साधारणतया प्रतिवर्ष कराया जाता है।	यह कुछ विशेष अवसरों पर ही कराया जाता है।
8.	जांच का स्वरूप (Typeof Checking)	इसमें प्रयोगात्मक जांच (Test Checking) का भी प्रयोग किया जाता है।	इसमें गहन एवं सूक्ष्म जांच की जाती है।
9.	रिपोर्ट (Report)	अंकेक्षण में रिपोर्ट अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुरूप ही दी जाती है।	इसमें रिपोर्ट अनुसंधान की प्रकृति पर निर्भर करती है।
10.	आलोचना (Criticism)	इसमें केवल उन बातों का उल्लेख किया जाता है जिनसे अंकेक्षक सहमत नहीं है अर्थात् इसमें कोई आलोचना नहीं की जाती।	अनुसंधान में कार्य आलोचनात्मक दृष्टि से एक निश्चित निष्कर्ष निकालने के लिए किया जाता है।
11.	प्रलेख (Documents)	अंकेक्षण में जांच का कार्य प्रपत्रों, प्रमाणकों व संलेखों की सहायता से किया जाता है।	अनुसंधान में प्रमाणकों व प्रपत्रों के अतिरिक्त जांच के लिए अन्य तथ्यों का भी प्रयोग किया जाता है।

■ 10. लेखाकर्म एक अनिवार्यता है जबकि अंकेक्षण विलासिता है

(Accountancy is a Necessity While Auditing is a Luxury)

कुछ विद्वान लेखाकर्म तथा अंकेक्षण का अंतर स्पष्ट करते हुए यह मत प्रकट करते हैं कि लेखाकर्म एक ''अनिवार्यता' है जबकि अंकेक्षण एक 'विलासिता' है। इस वाक्य पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि अनिवार्यता एवं विलासिता का अर्थ ठीक रूप में समझ लिया जाये। अनिवार्यता का संबंध उस मांग से है अर्थात् उन वस्तुओं से है जिनकी पूर्ति जीवित रहने तथा कार्यक्षमता बनाये रखने

के लिए आवश्यक है। जबकि विलासिता का आशय उस मांग से है अर्थात् उन वस्तुओं से है जिनकी पूर्ति के बिना मनुष्य जीवित तो रह सकता है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि हो बल्कि ऐसी स्थिति भी आ सकती है जबकि उसकी कार्यक्षमता में कुछ कमी आ जाए।

- **10.1 लेखाकर्म अनिवार्यता के रूप में (Accountancy as a Necessity)**

आज के औद्योगिक युग में लेखाकर्म के कार्य को सभी लोग आवश्यक मानते हैं। एक समय था जबकि व्यापार छोटे पैमाने पर चलाये जाते थे, थोड़े कर्मचारी काम करते थे, लेन-देन के लिए साख का चलन नहीं था तथा लेखाकर्म की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी, लेखाकर्म का काम विलासिता समझा जाता था और इसी कारण इसका प्रयोग बड़े-बड़े व्यापारिक घरानों तक ही सीमित था।

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् व्यावसायिक जीवन में प्रगति हुई। साख के प्रचलन से बैंक तथा बीमा कम्पनियों की संख्या बढ़ी, नये उद्योग, परिवहन के नये साधन, नयी विचारधारा, नये संगठन तथा एक नवीन क्रान्ति हुई। बड़े पैमाने पर व्यवहार होने लगे। एकाकी व्यापार से लेकर साझेदारी संस्थाएं तथा कम्पनियां बनने लगीं और पूंजी का विनियोग अधिक मात्रा में होने लगा। फलस्वरूप, लेखाकर्म की विकसित प्रणाली का प्रयोग किया जाने लगा। लेखाकर्म की आवश्यकता के संबंध में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं:

(1) **सीमित स्मरण शक्ति** (Limited Memory Power): आज व्यापार में प्रतिदिन अनेक लेन-देन होते हैं। सीमित स्मरण-शक्ति के कारण किसी भी व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं कि वह प्रत्येक व्यापारिक लेन-देन को याद रख सके अत: इन लेन-देनों का पुस्तकों में लेखा करना अनिवार्य हो जाता है।

(2) **व्यापार की वास्तविक स्थिति का ज्ञान** (Knowledge of Actual Position of Business): प्रत्येक व्यापारी यह जानना चाहता है कि एक निश्चित अवधि की समाप्ति पर उसे लाभ हुआ है अथवा हानि तथा व्यापार की वास्तविक आर्थिक स्थिति क्या है? इस जानकारी के लिए भी लेखाकर्म अनिवार्य है।

(3) **न्यायालय में प्रमाण** (Proof in Court): यदि व्यापारी ने अपनी लेखा-पुस्तकें उचित रूप से रखी हैं तो आवश्यकता पड़ने पर व्यापारिक पक्षों के बीच होने वाले मतभेद तथा झगड़ों की दशा में इन्हें न्यायालय के समक्ष प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है।

(4) **देनदारों एवं लेनदारों का ज्ञान** (Knowledge of Debtors and Creditors): व्यवसाय के विभिन्न देनदारों एवं लेनदारों का ज्ञान भी केवल लेखाकर्म द्वारा ही संभव है। न्यायालय की सहायता से देनदारों से ऋण की बकाया राशि वसूल करने के लिए भी लेखाकर्म के आधार पर रखी गई लेखा-पुस्तकें सहायक सिद्ध होती हैं।

(5) **दिवालिया होने की दशा में प्रमाण** (Proof in case of Insolvency): व्यापार में निरन्तर हानि होने से यदि कोई व्यापार अपने ऋणों को चुकाने में असमर्थ हो जाता है तो व्यापारी अपनी लेखा-पुस्तकों को न्यायालय में दिखाकर अपने को दिवालिया घोषित करा सकता है।

(6) **कर-निर्धारण में सहायक** (Helpful in Assessment of Tax): विभिन्न करों, जैसे- आयकर तथा बिक्री कर के निर्धारण करने के उद्देश्य से भी आयकर व बिक्री कर अधिकारी आय तथा बिक्री कर के प्रमाण के लिए लेखा पुस्तकें मांगते हैं। अत: इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लेखाकर्म आवश्यक है।

(7) **तुलनात्मक अध्ययन संभव** (Comparative Study Possible): यदि किसी व्यापारी ने अपना हिसाब-किताब उचित ढंग से रखा है तो वह चालू वर्ष के आय-व्यय, लाभ-हानि, क्रय-विक्रय, आदि की तुलना पिछले वर्षों से कर सकता है और भविष्य में भी यह उपयोगी सिद्ध होता है।

(8) **ऋण लेने की सुविधा** (Convenience in Borrowing): व्यापारी को समय-समय पर अपने व्यापार के विस्तार के लिए तथा आर्थिक संकट के समय धन की आवश्यकता पड़ती है। धन संबंधी सहायता वह अन्य व्यापारियों, बैंकों अथवा ऋण देने वाले अन्य संस्थानों से प्राप्त कर सकता है। यदि व्यापारी ने अपने व्यवसाय का हिसाब-किताब उचित ढंग से रखा है तो वह उसे दिखाकर अपनी **वित्तीय स्थिति** (Financial Position) का परिचय दे सकता है और आसानी से ऋण प्राप्त कर सकता है।

(9) व्यापार-विक्रय में सहायक (Helpful in the Sale of Business): व्यापार को विक्रय करते समय लेखा-पुस्तकों के आधार पर विभिन्न **संपत्तियों** (Assets) तथा **देनदारियों** (Liabilities) का मूल्यांकन करके विक्रय-मूल्य निश्चित किया जा सकता है। लेखाकर्म के अभाव में व्यवसाय के क्रय-विक्रय में अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

(10) छल-कपट से बचाव (Safety against Fraud): सुव्यवस्थित लेखा-पुस्तकों के कारण व्यवसाय के सभी कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव रहता है, जिससे व्यापार में रोकड़ अथवा माल का कर्मचारियों द्वारा गबन करने के अवसर बहुत कम हो जाते है। कर्मचारी छल-कपट व जालसाजी करने से डरते हैं, क्योंकि उनको पकड़े जाने का भय रहता है।

(11) साझेदारी में सहायक (Helpful in Partnership): साझेदारी में पुस्तपालन व लेखाकर्म की सहायता से रखे गए खातों का विशेष महत्व है। किसी नए साझेदार के आने पर, किसी साझेदार के अवकाश ग्रहण करने पर, किसी साझेदार की मृत्यु हो जाने पर अथवा फर्म की समाप्ति पर ख्याति का मूल्यांकन तथा लेन-देन का निपटारा आसानी से किया जा सकता है।

(12) व्यवसायिक सूचनाओं का साधन (Source of Business Information): लेखा-पुस्तकों से व्यवसायी को व्यवसाय से संबंधित विभिन्न आंकड़ों की प्राप्ति होती है। लेखाकर्म व्यापार के प्रबन्धक, ऋणदाता, विनियोजक स्वामी, साझेदार, अंशधारी तथा श्रमिक को आवश्यक सूचना प्रदान करता है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में लेखाकर्म अति अनिवार्य है।

● 10.2 अंकेक्षण विलासिता के रूप में (Audit as a Luxury)

अंकेक्षण को विलासिता कहने वाले व्यक्ति अपने पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं:

(1) धन का दुरुपयोग (Misuse of Money): अंकेक्षण कार्य हेतु एक योग्य चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट की आवश्यकता होती है जिसका पारिश्रमिक इतना अधिक होता है कि छोटा व्यापारी सहन नहीं कर सकता तथा इसका व्यापार की आर्थिक स्थित पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। अत: यह धन का दुरुपयोग माना जाता है।

(2) शक्ति की बर्बादी (Misuse of Energy): अंकेक्षण कार्य के लिए बहुत-सी औपचारिकताओं की पूर्ति करनी होती है। उदाहरण के लिए, प्रमाणकों को तारीखवार क्रम से रखना, देनदारों व लेनदारों की सूचियां बनाना, लेखा-पुस्तकों को व्यवस्थित रखना, इत्यादि। इन सभी कार्यों में व्यापारी की बहुत शक्ति नष्ट होती है।

(3) समय का दुरुपयोग (Wastage of Time): अंकेक्षण के कार्य में काफी समय लगता है क्योंकि अंकेक्षण कार्य एक निर्धारित पद्धति से होता है। अंकेक्षक के आदेशानुसार संस्था के कर्मचारी उसकी सूचना तथा स्पष्टीकरण देने, सूचियां तैयार करने तथा अन्य कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं। परिणामस्वरूप ऐसी संस्था को अपने बहुत से कार्य स्थगित करा देने पड़ते हैं। ऐसा समय का अपव्यय छोटे व्यवसायी सहन नहीं कर सकते।

(4) कर्मचारियों की कार्यक्षमता में कमी (Decrease in the efficiency of Employees): अंकेक्षक द्वारा बार-बार सूचनाएं एवं स्पष्टीकरण मांगने के परिणामस्वरूप कर्मचारियों के कार्य में बाधा उत्पन्न होती है जिससे उनकी कार्यक्षमता में कमी आती है।

(5) अंकेक्षण की निरर्थकता (Irrelevancy of Audit): प्राय: यह देखा जाता है कि अंकेक्षण के पश्चात् भी लेखा-पुस्तकों में त्रुटियां व छल-कपट रह जाते हैं। अत: अंकेक्षण निरर्थक रहता है और इसका महत्व समाप्त हो जाता है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि छोटे व्यापार के लिए अंकेक्षण विलासिता है लेकिन सभी व्यवसायों के लिए अंकेक्षण को विलासिता कहना गलत होगा क्योकि वर्तमान समय में उत्पादन एवं व्यापार बड़े पैमाने पर किया जाता है, पूंजी का विनियोग बढ़ा है तथा प्रबन्ध एवं स्वामित्त्व का पृथकीकरण हुआ है। इन समस्त कारणों से लेखाकर्म की आवश्यकता तो बढ़ी ही है साथ ही अंकेक्षण की आवश्यकता भी स्पष्ट दिखाई देने लगी है। कम्पनियों, **प्रन्यासों** (Trusts) **सहकारी संस्थाओं** (Cooperative Societies) तथा **सरकारी निगमों** (Govt. Corporations) आदि में तो अंकेक्षण विधान द्वारा अनिवार्य ही बना दिया गया है।

अत: यह कहना पूर्ण रूप से सत्य नही है कि लेखाकर्म अनिवार्य है और अंकेक्षण विलासिता। लेखाकर्म भी कहीं पर (फल विक्रेता, फेरी वाले, चाट बेचने वाले आदि के लिए) विलासिता हो सकती है यद्यपि यह अनिवार्यता ही है और अंकेक्षण बड़े व्यवसाय के लिए अनिवार्यता है तथा छोटे व्यवसायों के लिए विलासिता भी हो सकता है।

■ 11. अंकेक्षण का क्षेत्र (Scope of Audit)

अंकेक्षण के कार्य-क्षेत्र से आशय उस परिधि से है जिसके बाहर अंकेक्षक अपने कार्य को नहीं ले जा सकता। कार्य-क्षेत्र के निर्धारण से अंकेक्षक एक योजनाबद्ध तरीके से अपने समय व शक्ति का अधिकतम प्रयोग कर सकता है और साथ ही लापरवाही तथा कर्तव्य के दोषों से अपने आपको मुक्त रख सकता है। अंकेक्षक जब किसी व्यापार अथवा व्यवसाय के लेखों का अंकेक्षण कार्य आरंभ करता है तो सर्वप्रथम उसके सामने यह समस्या आती है कि वह जांच किस सीमा तक करे। इस सीमा का निर्धारण करना ही अंकेक्षण का कार्य निर्धारित करना है। यदि अंकेक्षण की सीमा ठीक प्रकार से निर्धारित हो जाती है, तो अंकेक्षण का कार्य सुचारु रूप से किये जाने की सम्भावना हो जाती है। जब तक अंकेक्षक को यह नहीं मालूम होगा कि उसे क्या-क्या करना है और किस सीमा तक करना है, तब तक उसका कार्य सन्तोषजनक नहीं हो सकता। अंकेक्षक को इस संबंध में कुशलता, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता तथा अनुभव का सहारा लेना चाहिए। यदि वह संस्था की जांच संबंधी आवश्यकताओं की अवहेलना करके कम श्रम तथा कम समय में अंकेक्षण कार्य पूरा कर देता है, अर्थात् अंकेक्षण का क्षेत्र विस्तृत तथा गहन नहीं रखता, तो उसकी त्रुटि के कारण भविष्य में न्यायालय उसे कर्त्तव्य भंग का दोषी ठहराकर क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहरा सकता है। इसके विपरीत यदि अंकेक्षक अंकेक्षण का क्षेत्र आवश्यकता से अधिक विस्तृत तथा गहन कर देता है, तो वह व्यर्थ में अपना बहुमूल्य समय व शक्ति नष्ट करेगा।

प्राचीन काल में अंकेक्षण का क्षेत्र केवल रोकड़ बही की जांच तक सीमित था क्योंकि व्यापारिक लेन-देन प्राय: नकद हुआ करते थे। परन्तु वर्तमान समय में व्यापारिक लेन-देन बहुत बढ़ गए हैं, उधार लेन-देन होने लगा है, व्यापार तथा यातायात में पर्याप्त उन्नति हुई है, श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है और उद्योग-धन्धे एकाकी व्यापार तथा साझेदारी के साथ-साथ बड़ी-बड़ी कम्पनियों द्वारा भी चलाए जा रहे हैं। अत: अंकेक्षण का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। **लंदन एण्ड जनरल बैंक** (London and General Bank) के मामले में न्यायधीश ने यह स्पष्ट शब्दों में कहा कि केवल पुस्तकों की अंकीय शुद्धता का सत्यापन करने मात्र से ही अंकेक्षक का कर्त्तव्य पूर्ण नहीं हो जाता बल्कि उसे यथोचित सावधानी के साथ यह देखना चाहिए कि उसके द्वारा प्रमाणित किए गए विभिन्न प्रलेख व पुस्तकें **सही** (True) हैं या नहीं।

इस प्रकार अंकेक्षक के निम्न कार्य हो जाते हैं:

(1) लेखों की अंकीय शुद्धता की जांच करना,

(2) लेखा-पुस्तकों की जांच सभी उपलब्ध प्रमाणकों, बीजकों, पत्र-प्रपत्रों, कार्यवाही-पुस्तिका इत्यादि की सहायता से करना,

(3) चिट्ठे में दिखाई गई संपत्ति एवं दायित्वों का सत्यापन एवं जांच करना, तथा

(4) नियोक्ता को अपनी जांच के परिणामों के संबंध में यथार्थ रूप में रिपोर्ट देना।

अंकेक्षण के कार्यक्षेत्र की सीमा विभिन्न संस्थाओं में भिन्न होती है, परन्तु सीमा निर्धारण करते समय साधारणतया निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

(1) अंकेक्षण किस उद्देश्य से कराया जा रहा है?

(2) क्या नियोक्ता ने अंकेक्षण के लिए विशेष सूचनायें दी हैं?

(3) तलपट का जोड़ मिलता है या इसमें अंतर है।

(4) यदि नियोक्ता साझेदारी संस्था है, तो साझेदारी अधिनियम तथा साझेदारी संलेख और यदि कम्पनी है, तो कम्पनी अधिनियम, पार्षद सीमानियम तथा पार्षद अंतर्नियमों की व्यवस्थाओं को ध्यान में रखकर कार्यक्षेत्र निश्चित किया जाना चाहिए।

(5) उस व्यापार से संबंधित कोई परिस्थितियां हैं?

(6) क्या आंतरिक निरीक्षण की प्रथा प्रयोग में लायी जाती है और यदि लायी जाती है, तो क्या वह संतोषजनक है?

अतएव जिस संस्था के हिसाब-किताब का अंकेक्षण होना है, उसके अनुरूप अंकेक्षण का क्षेत्र निर्धारित किया जा सकता है इस दृष्टिकोण से अंकेक्षण के क्षेत्र को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(1) निजी अंकेक्षण का क्षेत्र,

(2) वैधानिक अंकेक्षण का क्षेत्र तथा

(3) सरकारी अंकेक्षण का क्षेत्र

(1) निजी अंकेक्षण का क्षेत्र (Scope of Private Audit): निजी अंकेक्षण के अंतर्गत उन संस्थाओं का अंकेक्षण आता है जिन पर अंकेक्षण कराने की कोई वैधानिक बाध्यता नहीं है अर्थात् जिन्हें वैधानिक दृष्टि से अंकेक्षण कराना अनिवार्य नहीं है। जैसे- एकाकी व्यापारी तथा साझेदारी संस्थाएं इन संस्थाओं में अंकेक्षण के कार्यक्षेत्र का निर्धारण नियोक्ता व अंकेक्षक के बीच हुए समझौते के आधार पर ही होता है। अत: अंकेक्षक समझौते में ही अपने कार्यक्षेत्र की सीमा निर्धारित कर लेता है। यदि नियोक्ता कार्यक्षेत्र बताने में असमर्थ होता है तो वह अंकेक्षक को अंकेक्षण कराने का अपना उद्देश्य बता देता है जिसके आधार पर भी अंकेक्षक अपने चातुर्य, दूरदर्शिता व अनुभव के आधार पर कार्यक्षेत्र निर्धारित कर लेता है। व्यवसाय से संबंधित यदि कोई नियमावली है तो उसका भी अंकेक्षक को गहन अध्ययन करना चाहिये, जैसे- साझेदारी संस्था का अंकेक्षण करते समय साझेदारी संलेख की अंकेक्षण संबंधी धाराओं का विशेष रूप से अध्ययन करके तदानुसार अंकेक्षण का क्षेत्र निर्धारित करना चाहिये।

(2) वैधानिक अंकेक्षण का क्षेत्र (Scope of Statutory Audit): कुछ संस्थाएं ऐसी होती हैं जिनके हिसाब-किताब का अंकेक्षण करवाना किसी विधान द्वारा अनिवार्य कर दिया जाता है जैसे- कम्पनी, सार्वजनिक ट्रस्ट, बैंक, बीमा कम्पनी इत्यादि। कम्पनी अधिनियम द्वारा कम्पनियों के हिसाब-किताब का अंकेक्षण किसी योग्य अंकेक्षक द्वारा कराया जाना अनिवार्य है, जिससे कम्पनी के अशंधारी कम्पनी के हिसाब-किताब की शुद्धता के संबंध में आश्वस्त हो सकें और उन्हें इस बात का विश्वास हो जाए कि निश्चित अवधि का लाभ-हानि खाता इस अवधि के सही लाभ या हानि को प्रदर्शित करता है और चिट्ठे में दिखाये गये दायित्व तथा संपत्तियां सही एवं वास्तविक हैं। कम्पनियों का अंकेक्षण अनिवार्य करने के बावजूद कम्पनी अधिनियम में कम्पनी अंकेक्षण का क्षेत्र स्पष्ट नहीं किया गया है। अर्थात् यह निश्चित नहीं है कि अंकेक्षक किन-किन पुस्तकों की जांच करे, प्रत्येक पुस्तक के कितने व्यवहारों की जांच करे? साधारणतया संबंधित विधान अंकेक्षण का उद्देश्य ही दर्शाते हैं। अतएव वैधानिक अंकेक्षण का क्षेत्र भी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अंकेक्षक को स्वयं ही तय करना पड़ता है। चाहे वह विस्तृत एवं गहन जांच करे या न करे, अंतत: उसकी पूरी जिम्मेदारी है।

(3) सरकारी अंकेक्षण का क्षेत्र (Scope of Govt. Audit): सरकार अपने विभागों तथा अपने द्वारा संचालित अन्य संस्थाओं के हिसाब-किताब की जांच करवाती है। इसे सरकारी अंकेक्षण कहते हैं। भारत में राष्ट्रपति द्वारा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक अर्थात् **कम्पट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल** (Comptroller and Auditor General) की नियुक्ति की जाती है जो अपने कर्मचारियों द्वारा केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों तथा संस्था के लेखों की जांच कराता है। अंकेक्षक की भांति जांच के बाद सरकार के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों के भी अपने अंकेक्षण विभाग होते हैं जो संबंधित राज्य सरकार के विभागों तथा संस्थाओं के लेखों की जांच करके राज्य सरकार को रिपोर्ट देते हैं।

भारत के नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक को केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार व अन्य सरकारी संस्थाओं के लेखों की जांच का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 149 के अधीन दिया गया है जिसमें लेखा परीक्षक अर्थात् अंकेक्षक के अधिकार कर्त्तव्य व कार्यक्षेत्र का वर्णन किया गया है।

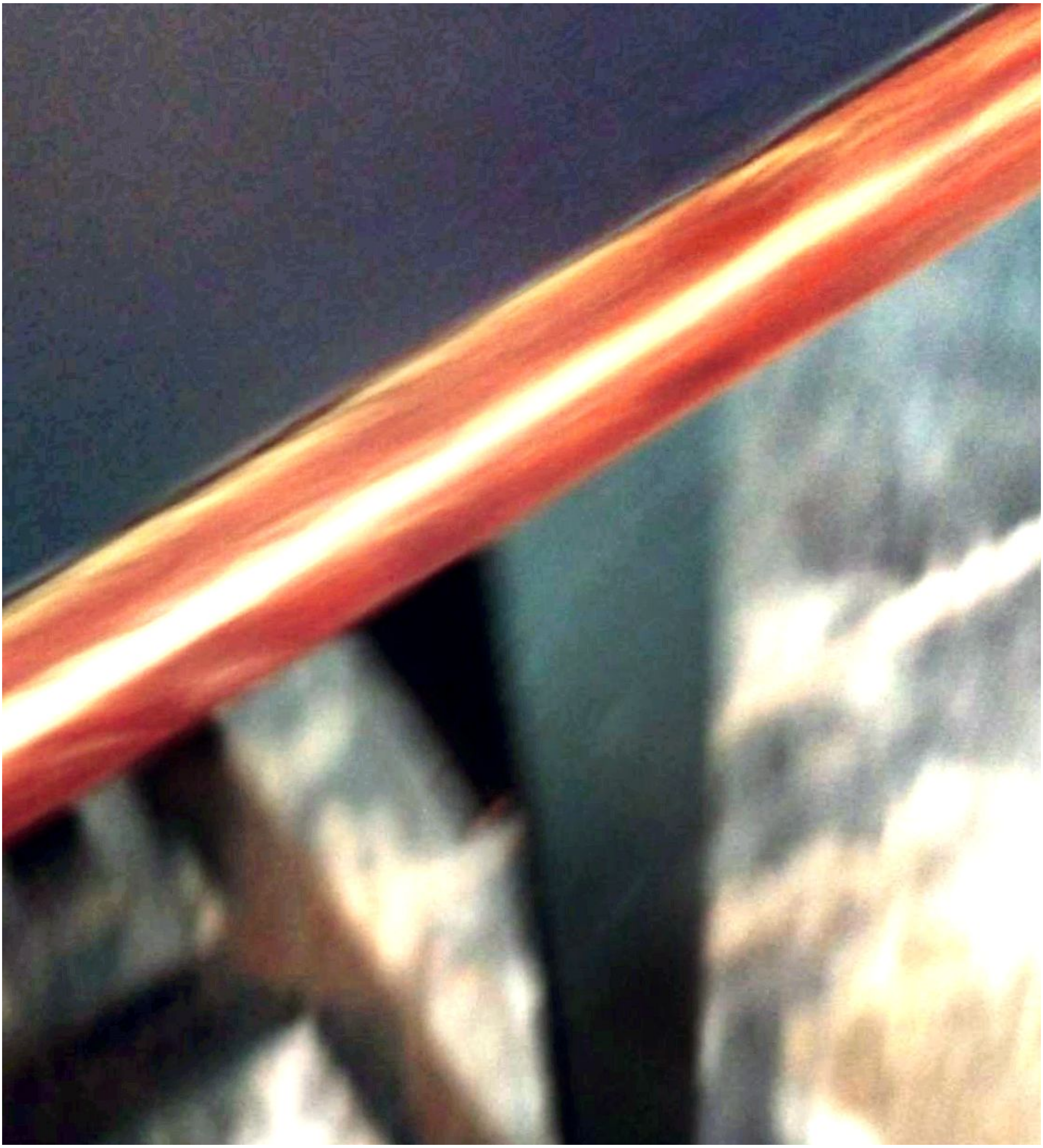

की प्राप्ति की विधि सुझाते है।" (Audit Principles are the basic truth which are indicative of the objectives of auditing. The audit principles suggest the manner in which the objectives of the audit are accomplished" Arthur W. Holmes)

इस प्रकार अंकेक्षण सिद्धांत लेखों व वित्तीय विवरणों की सत्यता प्रमाणित करने हेतु जांच तथा अन्वेषण के तरीके निर्धारित करते है। इन सिद्धांतों के अंतर्गत हिसाब किताब की प्रविष्टियों की नैत्यक जांच, प्रमाणन तथा सत्यापन के नियम भी शामिल है।

अंकेक्षण के कुछ आधारभूत सिद्धांत निम्नलिखित है

(1) **स्वतंत्रता का सिद्धांत** (Principle of Independence): अंकेक्षण कार्य **लेखांकन** (Accountancy) से स्वतंत्र होना चाहिए और अंकेक्षण में हिसाब किताब की जांच तटस्थ तथा स्वतंत्र रूप से करनी चाहिए।

(2) **वस्तुनिष्ठता का सिद्धांत** (Principle of Objectivity): अंकेक्षण कार्य संबंधित **सबूतों** (Evidences) के आधार पर निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए।

(3) **सारता का सिद्धांत** (Principle of Materiality): यह सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि अंकेक्षक को महत्वपूर्ण लेन देनों तथा सम्भावित छल कपटों की गहन जांच करना चाहिए।

(4) **पूर्ण प्रकटीकरण का सिद्धांत** (Principle of Full Disclosure): इस सिद्धांत के अनुसार नियोक्ता द्वारा अंकेक्षक को सभी प्रमाण, स्पष्टीकरण तथा रिकॉर्ड उपलब्ध कराने चाहिये तथा अंकेक्षक को भी अपनी जांच के परिणाम की घोषणा स्पष्ट रूप से करनी चाहिए।

1.1.2 अंकेक्षण प्रक्रियाएं (Audit Procedures)

अंकेक्षण प्रक्रियाओं में उन सब कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जो लेखों की जांच पड़ताल के दौरान पूरे किये जाते है। निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु निश्चित किये गए प्रमाणों को आधार मानकर कुछ प्रक्रियाओं को काम में लेना होता है। ये प्रक्रियाएं जांच के लिए चुनी हुई पद्धति होती है। अंकेक्षक व्यापार की प्रकृति तथा अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखकर अंकेक्षण प्रक्रिया का चुनाव करता है। वह व्यवसाय की सम्पत्तियों, दायित्वों तथा अन्य मदों के बारे में नियोक्ता से विभिन्न सूचनाएं तथा विवरण पत्र मांगता है तथा इनकी सहायता से जांच का कार्य करता है।

1.1.3 अंकेक्षण प्रविधियां अथवा तकनीक (Audit Techniques)

अंकेक्षण करते समय लेखों की सत्यता पता लगाने हेतु विभिन्न प्रमाणों को प्राप्त करने के लिए जिन रीतियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें अंकेक्षण प्रविधि अथवा तकनीक के नाम से जाना जाता है। अतः अंकेक्षण तकनीक का अर्थ लेखों की जांच पड़ताल करने के **तरीकों** (Methods of Performance) से है। वह सब तरीके जिनका उपयोग अंकेक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है अंकेक्षण तकनीक अथवा प्रविधि में सम्मिलित है दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि अंकेक्षण प्रविधि में वह सब उपाय शामिल है जिन्हें अंकेक्षक अपनी जांच के लिए आवश्यक **प्रमाण** (Evidence) को इकट्ठा करने हेतु उपयोग में लाता है। अंकेक्षण प्रविधि स्वयं किसी व्यवहार के लिए प्रमाण नहीं होती, इसके द्वारा तो प्रमाण प्राप्त किया जाता। इस प्रमाण के आधार पर अंकेक्षक हिसाब किताब के बारे में अपनी विशेष राय देता है। प्रमाण **प्रमाणकों** (Vouchers) अथवा किसी अन्य रूप में हो सकता है।

अंकेक्षण प्रविधियों के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण निम्नलिखित है:

(1) भौतिक परीक्षण।

(2) भौतिक गणना।

(3) उपलब्ध साक्ष्यों (Evidences) की पुष्टि करना।

(4) पुस्तपालन के कार्य की पुनः देखना।

(5) मूल प्रपत्रों की जांच करना।

(6) लेखों की जांच करना।

(7) पूछताछ करना।

(8) सहायक लेखों की जांच करना।

(9) संबंधित मदों में सह-संबंध स्थापित करना।

(10) वित्तीय विवरणों का विश्लेषण

- **13.4 सिद्धांत, प्रक्रिया तथा प्रविधि में परस्पर संबंध (Relationship between Principles, Procedures and Techniques)**

अंकेक्षण के सिद्धांत, प्रक्रिया व प्रविधि में निकट का संबंध है। प्रत्येक अंकेक्षण में सिद्धांतों के आधार पर जांच-कार्य की एक योजना बनायी जाती है। यह योजना हमेशा अंकेक्षण मानदण्डों के अनुसार बनाई जाती है। इस योजना के अनुरूप अंकेक्षण प्रक्रिया अपनाई जाती है और साक्ष्य इकट्ठे करने के लिए अंकेक्षण प्रविधियां लागू की जाती हैं। इन अंकेक्षण प्रविधियों को कार्यकुशल एवं प्रभावी बनाने के उद्देश्य से समय-समय पर उनमें सुधार एवं परिवर्तन किये जाते हैं। स्मरण रहे, अंकेक्षण प्रविधि को अंकेक्षण प्रक्रिया के अनुसार ही अपनाया जाता है। समुचित प्रविधियों के प्रयोग से अंकेक्षण प्रक्रिया लेखों की शुद्धता की सही-सही जानकारी देती है। उदाहरणार्थ, सामग्री का क्रय सदैव आयगत माना जाता है, यह एक सिद्धांत है। इसके संबंध के क्रय-आदेश, माल-प्राप्ति पत्र, बीजक आदि प्रपत्रों की प्राप्ति तथा माल की मौजूदगी की जानकारी करना एक प्रक्रिया और इन सबकी सत्यता व पूर्णता प्रमाणित करना प्रविधि बन सकती है।

इसी प्रकार यदि अंकेक्षक उधार बिक्री के व्यवहारों का अंकेक्षण कर रहा है तो वह अंकेक्षण सिद्धांत, प्रक्रिया एवं प्रविधि के स्तरों (Stages) से निम्न प्रकार गुजरेगा:

सिद्धांत: संबंधित अवधि के समस्त उधार बिक्री के सौदों को लेखा-पुस्तकों में लिखा जाए।

प्रक्रिया: इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर अंकेक्षण प्रक्रिया निर्धारित करेगा जिसमें वह निश्चय करेगा कि विक्रय आदेश, बीजक, माल-बाहरी पुस्तक तथा लेखा-पुस्तकों की प्रविष्टियों से जांच की जाए।

प्रविधि: उपरोक्त प्रपत्रों के आधार पर प्रारंभिक लेखा-पुस्तकों का प्रमाणन, नैत्यक जांच, परीक्षण जांच, सत्यापन तथा मूल्यांकन आदि अंकेक्षण प्रविधियों की सहायता से प्रमाण प्राप्त करके जांच करना।

■ 14. अंकेक्षक के गुण (Qualities of an Auditor)

भारत में अंकेक्षक के रूप में केवल वही व्यक्ति कार्य कर सकता है जिसने **इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट ऑफ** इण्डिया (Institute of Chartered Accountant of India) से चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट की उपाधि (degree) प्राप्त की हो अर्थात् जो व्यक्ति **सी.ए.** (C.A.) हो किन्तु व्यावसायिक तथा वैधानिक योग्यताओं के अतिरिक्त एक अंकेक्षक में निम्नलिखित गुण भी होने चाहिये जिससे वह अपना कार्य सुगमता एवं कुशलता से कर सके:

(1) **पुस्तपालन एवं लेखांकन का पूर्ण ज्ञान** (Complete Knowledge of Book-Keeping and Accountancy): अंकेक्षक के लिए वह परमावश्यक है कि वह पुस्तपालन तथा लेखाकर्म के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान में पूर्ण हो। उसे पुस्तपालन तथा लेखाकर्म की विविध प्रणालियों तथा उनके भिन्न-भिन्न पहलुओं से भली प्रकार परिचित होना चाहिए। इस ज्ञान के अभाव में अंकेक्षक इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि किसी संस्था के खाते उचित एवं सही हैं।

(2) **व्यवसाय की प्रकृति का ज्ञान** (Knowledge of Nature of Business): वह जिस व्यवसाय के लेखों की जांच कर रहा है, उसकी प्रकृति के विषय में उसे जानना चाहिए। उसे न केवल उस संस्था के स्वभाव से जिसके खातों का वह अंकेक्षण कर रहा है भली प्रकार परिचित ही होना चाहिए बल्कि उसके **सभी तांत्रिक एवं विशिष्ट पहलुओं** की पूर्ण **जानकारी** भी होनी चाहिए। इस संबंध में उसके लिए अंकेक्षण का कार्य प्रारंभ करने से पूर्व संस्था का निरीक्षण करना बेहतर एवं लाभदायक होगा।

(3) **विभिन्न अधिनियमों का ज्ञान** (Knowledge of Various Acts): अंकेक्षक को समस्त व्यापारिक अधिनियमों का ज्ञान होना चाहिए, साथ ही साथ उनमें होने वाले संशोधनों का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। मुख्य व्यापारिक अधिनियम निम्नलिखित हैं:

(1) साझेदारी अधिनियम (Parternship Act)

(2) कम्पनी अधिनियम (Company Act.)

(3) आय कर अधिनियम (Income Tax Act)

(4) कारखाना अधिनियम (Factory Act)

(5) बिक्री कर अधिनियम (Sales Tax Act)

(6) वस्तु विक्रय अधिनियम (Sales of Goods Act)

(7) अनुबंध अधिनियम (Contract Act)

(8) प्रलेख अधिनियम (Instrument Act)

(4) अंकेक्षण कार्य में निपुण (Expert in Auditing Work): अंकेक्षक को अंकेक्षण के कार्य में निपुण होना चाहिये। कार्य में निपुणता पूर्ण ज्ञान तथा व्यावहारिकता से प्राप्त की जा सकती है।

(5) निष्पक्ष एवं ईमानदार (Impartial and Honest): अंकेक्षक को अपने कर्त्तव्य का पालन करने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अन्य व्यक्तियों से प्रभावित नहीं होना चाहिये। उसे अपना कार्य पूरी ईमानदारी से करना चाहिये तथा जिस बात (प्रविष्टि) की सत्यता पर विश्वास न हो, उसे प्रमाणित नहीं करना चाहिये। निष्पक्ष एवं ईमानदार रहते हुए उसे सही तथ्य अपनी रिपोर्ट में लिखने चाहिये।

(6) परिश्रमी, सतर्क एवं चतुर (Industrious, Vigilant and Clever): एक अंकेक्षक का परिश्रमी होना भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि व्यापारिक लेखों से त्रुटियां व छल-कपट निकालने के लिये अंकेक्षक को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। अपना कार्य करते समय उसे पूर्णत: सतर्क व चौकन्ना रहना चाहिये तथा अपने कार्यों में चातुर्य व कुशलता का परिचय देना चाहिए।

(7) व्यवहारिक (Practical): अंकेक्षण के कार्य में अंकेक्षक को संस्था के कर्मचारियों से अनेक सूचनाओं एवं स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है तथा छल-कपट करने वाले व्यक्ति संबंधित सूचनाओं एवं स्पष्टीकरण को अंकेक्षक को देने में आनाकानी करते हैं। अत: एक अंकेक्षक को इन सूचनाओं आदि को पूछने के समय व्यावहारिकता से काम लेना चाहिये जिससे अनावश्यक बातें न पूछी जाएं, कम समय में अधिक सूचनाएं प्राप्त हो तथा सूचना देने वाले व्यक्ति नाराज न हों। व्यावहारिकता अंकेक्षक से विनम्रता, सहनशीलता तथा मृदुभाषा की आशा करती है। अत: उसमें इन व्यक्तिगत गुणों का होना आवश्यक है।

(8) स्वतन्त्र तथा निडर (Independent and fearless): अंकेक्षक को खातों की सत्यता व औचित्य की जांच स्वतन्त्रता तथा निष्पक्ष भाव से करनी चाहिए। साथ ही उसे निडर भी होना चाहिए तथा किसी भी प्रकार की अशुद्धियों व कपटों को छिपाना नहीं चाहिए। उसे किसी दबाव में आकर कार्य की सच्चाई से विमुख नहीं होना चाहिये।

(9) गोपनीयता (Secrecy): अंकेक्षक को संस्था की सभी लेखा-पुस्तकों तक पहुंचने तथा उन्हें जांचने का अधिकार होता है। अत: अंकेक्षण के दौरान उसे संस्था की बहुत-सी गोपनीय बातों का पता चल जाता है। अंकेक्षक को इन बातों को किसी तीसरे पक्ष के समक्ष व्यक्त नहीं करना चाहिए।

(10) व्यर्थ शंकालु न होना (No Unduly Suspicious): अंकेक्षक को व्यर्थ का शंकालु नहीं होना चाहिये तथा अनावश्यक रूप से संदेह की भावना को जन्म नहीं देना चाहिए। उसे कभी भी यह सोचकर कार्य प्रारंभ नहीं करना चाहिए कि उसमें त्रुटियां व छल-कपट अवश्य होंगे। उसे किसी चीज की आलोचना केवल शंका मात्र से नहीं करनी चाहिए बल्कि कर्मचारियों को इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त अवसर देना चाहिए।

(11) स्पष्ट एवं प्रभावपूर्ण लिखने की क्षमता (Ability to write clear and influential): अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट सदैव बड़े ही संक्षेप में प्रभावपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करनी चाहिए। 'संक्षेप' से, यह तात्पर्य नहीं कि उसके शब्दों के दो अर्थ निकले और पढ़ने वाले के मस्तिष्क में भ्रम उत्पन्न हो। अंकेक्षक में यह गुण होना चाहिए कि वह जो कुछ प्रस्तुत करना चाहे उसे थोड़े एवं प्रभावपूर्ण शब्दों में व्यक्त करें।

■ 15. अंकेक्षक के प्रकार (Types of Auditors)

लारेन्स आर. डिक्सी (Lawrence R. Dickcey) ने अंकेक्षकों को निम्न वर्गों में विभाजित किया है:

(1) **अनिपुण अंकेक्षक** (Amateur Auditor): अनिपुण अंकेक्षक से तात्पर्य ऐसे अंकेक्षकों से है जो अंकेक्षण कार्य में दक्ष नहीं होते। प्राय: ऐसे अंकेक्षक अपना शौक पूरा करने के लिए बिना **वेतन** (Honrary) के कार्य करते हैं जिसके कारण वे अंकेक्षण कार्य पूर्ण मेहनत व सतर्कता से नहीं कर पाते। अत: ऐसे व्यक्तियों से अंकेक्षण का कार्य कराकर अनेक पक्षों को नुकसान उठाना पड़ सकता है। इन्हें अवैतनिक अंकेक्षक (Honorary Auditor) भी कहते हैं।

(2) **व्यावसायिक अंकेक्षक** (Professional Auditor): ये अंकेक्षक **इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट ऑफ इण्डिया** (Institute of Chartered Accountant of India) द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं। ये वास्तव में योग्य व **मान्य** (Approved) अंकेक्षक होते हैं. आजकल प्राय: सभी व्यावसायिक तथा व्यापारिक संस्थाएं जैसे- एकाकी व्यापारी, फर्म तथा कम्पनियां अपने खातों की जांच कराने के लिए इन्हीं अंकेक्षकों को नियुक्त करती हैं। ये अंकेक्षक किसी के नौकर नहीं होते हैं, वरन् एक समझौते द्वारा उचित पारिश्रमिक पर एक निश्चित काल के लिए नियुक्त किए जाते हैं।

(3) **सरकारी अंकेक्षक** (Government Auditor): सरकार के खातों का अंकेक्षण करने वाले अंकेक्षक को सरकारी अंकेक्षक कहते हैं। भारत सरकार के अंकेक्षण विभाग में सबसे बड़ा अधिकारी **कम्पट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल ऑफ इण्डिया** (Comptroller and Auditor General of India) कहा जाता है। यही व्यक्ति भारत सरकार के विभिन्न कार्यालयों के खातों का अंकेक्षण करने के लिए अंकेक्षकों की नियुक्ति करता है। सरकारी अंकेक्षकों के संबंध में विस्तृत विवरण **ऑडिट कोड** (Audit Code) में दिया गया है।

प्रश्न

अध्याय

अंकेक्षण के उद्देश्य, महत्त्व एवं सीमाएँ

(Objects, Importance and Limitations of Auditing)

1. अंकेक्षण के उद्देश्य (Objects of Auditing)

अंकेक्षण का मुख्य उद्देश्य नियोक्ता द्वारा तैयार किये गए हिसाब-किताब और खातों की जांच करना तथा उनकी पूर्णता, शुद्धता तथा नियमानुकूलता का पता लगाना है जिससे वह यह प्रमाणित कर सके कि लाभ-हानि खाते द्वारा प्रदर्शित शुद्ध लाभ अथवा हानि **सही एवं उचित** (True and fair) है तथा चिट्ठा व्यापार की वित्तीय स्थिति को सही और उचित रूप में प्रकट करता है। लेखा-पुस्तकों एवं खातों की पूर्णता, शुद्धता तथा नियमानुकूलता का अर्थ है कि उनमें कोई त्रुटि (जाने या अनजाने में) या छल-कपट शेष न रहे। अतः त्रुटियां एवं छल-कपटों को खोजकर ढूंढ निकालना अंकेक्षण का सहायक उद्देश्य कहा जा सकता है। वास्तविकता तो यह है कि त्रुटियों एवं छल-कपटों को निकाले बिना खातों की शुद्धता एवं सत्यता को प्रमाणित ही नहीं किया जा सकता। अतः अंकेक्षण के उद्देश्य का अध्ययन करने से पहले लेखा-पुस्तकों में होने वाली अशुद्धियां एवं त्रुटियां तथा गबन या कपट की जानकारी प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

स्पाइसर एवं पैगलर तथा वाल्टर डब्ल्यू विग ने अंकेक्षण के उद्देश्य के संबंध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं- अंकेक्षण का मुख्य उद्देश्य नियोक्ता या उसके कर्मचारियों द्वारा तैयार किये गए खातों एवं विवरणों का सत्यापन करना है। यद्यपि त्रुटियों एवं कपटों को ढूंढना भी अंकेक्षण का उद्देश्य है किन्तु यह सहायक उद्देश्य माना जाना चाहिये। सुविधा की दृष्टि से अंकेक्षण के उद्देश्य को तीन भागों में बांटा जा सकता है जो निम्न चार्ट से स्पष्ट है:

अंकेक्षण के उद्देश्य (Objects of Auditing)

I. मुख्य उद्देश्य (Main Object)	II. सहायक उद्देश्य (Subsidiary Objects)	III. अन्य उद्देश्य (Other Objects)
लेखों की सत्यता, पूर्णता तथा नियमानुकूलता के संबंध में ज्ञान प्राप्त करना।	1. त्रुटियों को ढूंढना 2. कपट को ढूंढ़ना 3. त्रुटियों तथा कपटों को रोकना	1. कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव डालना

- **I. मुख्य उद्देश्य (Main Objects)**

मुख्य उद्देश्य में हिसाब-किताब की सत्यता, पूर्णता तथा नियमानुकूलता का ज्ञान प्राप्त करना आता है। यदि अंकेक्षण द्वारा केवल यही ज्ञान प्राप्त हो कि लेखा-पुस्तकों में किए गए लेखे सत्यता को प्रकट करते हैं और यह ज्ञान प्राप्त नहीं होता है कि लेखा सब प्रकार पूर्ण एवं नियमानुकूल हैं तो अंकेक्षण मुख्य उद्देश्य की पूर्ति करता हुआ नहीं माना जाएगा। यही कारण है कि प्रत्येक अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट लिखते समय तीनों ही तथ्य अर्थात् सत्यता, पूर्णता, नियमानुकूलता ध्यान में रखने चाहिए क्योंकि यही तीनों बातें अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में देनी होती हैं।

II. सहायक उद्देश्य (Subsidiary Objects)

जिन उद्देश्यों की सहायता से मुख्य उद्देश्य पूरे हों उन्हें सहायक उद्देश्य कहते हैं, ये उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:

(1) **त्रुटियों को ढूंढना** (Detection of Errors)

(2) **अशुद्धियां का पता लगाना** (Location of Errors):

(3) **छल-कपटों का पता लगाना** (Detection of Frauds)।

(1) त्रुटियों को ढूंढना (Detection of Errors): अधिकतर अशुद्धियां लापरवाही या अज्ञानता के कारण होती हैं। परंतु कभी-कभी बारीकी से जांच करने से पता चलता है कि कुछ अशुद्धियां जान-बूझकर छल-कपट करने के उद्देश्य से की जाती हैं। ऐसी अशुद्धियों का प्रभाव संस्था के लाभ-हानि खाते तथा चिट्ठे की सत्यता एवं वास्तविकता पर पड़ता है, जो कि अंकेक्षण का मुख्य उद्देश्य है। अत: अंकेक्षक को अशुद्धियों की अच्छी तरह जांच-पड़ताल करनी चाहिए।

अशुद्धियां निम्नलिखित पांच प्रकार की हो सकती हैं:

(i) भूल की अशुद्धियां (Errors of Omission)

(ii) लेखे की अशुद्धियां (Errors of Commission)

(iii) क्षतिपूरक अशुद्धियां (Compensatory Errors)

(iv) सैद्धान्तिक अशुद्धियां (Errors of Principle)

(v) दुबारा लिखे जाने वाली अशुद्धियां (Errors of Duplication)

(i) भूल की अशुद्धियां (Errors of Omission): जब कोई लेन-देन प्रारंभिक लेखों की पुस्तकों में लिखने से बिल्कुल ही छूट जाता है, तो उसे भूल की अशुद्धि कहा जाता है। यदि व्यापारी किसी **व्यवहार** (Transaction) को प्रारंभिक लेखे की पुस्तकों में लिखना बिल्कुल ही भूल जाता है तो उसकी **खतौनी** (Posting) होने का प्रश्न नहीं उठता। ऐसी अशुद्धि का तलपट पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यह लेखा व्यापारी की पुस्तकों में कहीं भी नहीं किया गया है। तलपट के दोनों पक्ष मिल जाने पर भी यह अशुद्धि बनी रहती है। उदाहरण के लिए, यदि हमने रमेश से ₹ 300 का माल खरीदा और अपनी पुस्तकों में इस लेन-देन का कोई लेखा नहीं किया है तो इससे तलपट के दोनों पक्षों का योग तो मिल जाएगा लेकिन दोनों खातों में तीन-तीन सौ रुपये की अशुद्धि रह जाएगी। किसी व्यवहार को प्रारंभिक पुस्तकों में लिखने संबंधी **भूल पूर्ण** (Complete Omission) अथवा **आंशिक** (Partial Omission) दोनों हो सकती हैं। पूर्ण भूल संबंधी अशुद्धि को ढूंढ निकालना सरल नहीं होता क्योंकि इसमें व्यवहार के दोनों रूप (Debit and Credit) पुस्तकों में नहीं लिखे जाते।

आंशिक भूलों का पता लगाना आसान है क्योंकि तलपट के दोनों पक्षों का जोड़ नहीं मिलेगा। भूल की अशुद्धियों का पता लगाने के लिए आन्तरिक निरीक्षण की कुशल व्यवस्था तथा अंकेक्षक द्वारा सूक्ष्म जांच आवश्यक होती है।

(ii) लेखे की अशुद्धियां (Errors of Commission): ये अशुद्धियां उस समय होती हैं जब लेखा-पुस्तकों में किसी लेन-देन की प्रविष्टि पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से गलत लिखी जाती है। इन अशुद्धियों के अंतर्गत गलत लेखा करना, जोड़ लगाना, खतियाना, गणना करना तथा एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ पर जोड़ या शेष को गलत ले जाना आदि सम्मिलित हैं। ये अशुद्धियां भी पूर्ण अथवा आंशिक हो सकती हैं। आंशिक अशुद्धि प्राय: तलपट के द्वारा प्रकट हो जाती है परंतु पूर्ण अशुद्धि का तलपट के योग पर प्रभाव नहीं पड़ता। यदि प्रारंभिक लेखे की पुस्तकों में जैसे- रोजानामचा अथवा अन्य किसी बही में लेखा करते समय कोई गलती हो गई, तो खाता बही में खतौनी करते समय भी गलती रह जाएगी। अत: हमारा तलपट मिल जाने पर वह गलती किताबों में रह जाएगी परंतु उसका कोई प्रभाव तलपट के योग पर नहीं पड़ेगा। जैसे महेश से ₹ 5,400 का माल खरीदा और हम ₹ 4,500 लिख गए। यह बहुत बड़ी अशुद्धि है परंतु तलपट बनाते समय तलपट पर इन अशुद्धियों का प्रभाव नहीं पड़ेगा और तलपट के दोनों पक्षों का योग मिल जाएगा। अत: जिन अशुद्धियों के होने से तलपट मिल जाता है उनको खोजने के लिए अंकेक्षक को बड़ी सावधानी, सतर्कता व बुद्धिमानी से

काम लेना पड़ता है। जो संस्था स्वकीय **संतुलन प्रणाली** (Self-balancing System) अपनाती है उनके लेखों में ऐसी अशुद्धियां कम होती है।

(iii) **क्षतिपूरक अशुद्धिया** (Compensatory Errors): ये अशुद्धियां दो या दो से अधिक एक साथ होती है और इस प्रकार होती है कि एक-दूसरे के प्रभाव को समाप्त कर देती है अत: जब एक खाते की अशुद्धि की क्षति दूसरे खाते की अशुद्धि द्वारा पूरी कर दी जाती है तो ऐसी अशुद्धि को क्षतिपूरक अशुद्धि कहते हैं। ऐसी अशुद्धियों का तलपट के योग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, यद्यपि लाभ हानि खाते पर पड़ सकता है। इन अशुद्धियों का स्वभाव भिन्न हो सकता है परन्तु इनकी राशि एक ही समान होती है। उदाहरण के लिए महेश के खाते में ₹ 200 के स्थान पर ₹ 20 डेबिट कर दिए जाए तथा विनोद के खाते में ₹ 20 डेबिट करने के स्थान पर ₹ 200 डेबिट कर दिये जाएं। यद्यपि दोनों व्यक्तियों के खातों में अशुद्धिया रह जाएंगी लेकिन तलपट के मिलान पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। क्षतिपूरक अशुद्धियों के लिए अंकेक्षक द्वारा पूर्ण जांच आवश्यक है क्योंकि कई बार लम्बे समय तक इनका पता नहीं चलता।

(iv) **सैद्धान्तिक अशुद्धियां** (Errors of Principle): ये वे अशुद्धियां हैं जो दोहरा लेखा प्रणाली का ठीक ज्ञान न होने तथा लेखाकर्म के सामान्य सिद्धान्तों का पालन न करने से हो जाती है। उदाहरणार्थ- पूंजी व आय में ठीक अंतर न करना, किसी आय-व्यय को अन्य आय-व्यय में डाल देना, आय और व्यय की रकम व्यक्तिगत खातों में लिखना, संपत्तियों का गलत मूल्यांकन करना आदि। जैसे- भवन के विस्तार के लिए ₹ 1,000 खर्च किए तथा इन्हें **मरम्मत खाते** (Repair A/c) में डेबिट कर दिया जाए। इसी प्रकार भूमिपति को ₹ 500 किराये के दिए और उन्हें **किराये खाते** (Rent A/c) में डेबिट न करके **भूमिपति के खाते** (Landlord A/c) में डेबिट कर दिया जाए। इन अशुद्धियों का तलपट पर प्रभाव नहीं पड़ता यद्यपि लाभ-हानि खाते पर पड़ सकता है। प्राय: ये अशुद्धियां या तो अनजाने में हो जाती हैं, या खातों में गड़बड़ी करने के उद्देश्य से जानबूझ कर की जाती हैं। इनका प्रभाव स्थिति-विवरण पर भी पड़ता है।

(v) **दुबारा लिखे जाने वाली अशुद्धियां** (Errors of Duplication): ये अशुद्धियां प्राय: उस समय होती हैं जब कोई लेन-देन प्रारंभिक पुस्तकों में दो बार लिख दिया जाता है तथा खाता बही में भी दो बार खता दिया जाता है। जैसे -मान लीजिए मोहन से ₹ 1,000 प्राप्त हुए और इसे लेखा-पुस्तकों में दो बार लिख दिया जाए तथा दो ही बार मोहन के खाते में खता दिया जाए। ऐसी अशुद्धियां प्राय: असावधानी के कारण हो जाया करती हैं। वास्तव में ऐसी अशुद्धि भी एक प्रकार से **लेखे की ही अशुद्धि (Error of Commission) मानी जाती है।** इन अशुद्धियों का तलपट के मिलान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अंकेक्षक ऐसी अशुद्धियों को **नैत्यक जांच** (Routine Checking) द्वारा ही मालूम कर सकता है।

उपरोक्त अशुद्धियां निम्न प्रकार से पता लगायी जा सकती है:

(2) अशुद्धियों का पता लगाना (Location of Errors): तलपट का **जोड़** (Total) न मिलने पर अशुद्धियों की खोज करना अंकेक्षक का कार्य नहीं है। अंकेक्षक का कार्य केवल हिसाब-किताब की पुस्तकों की पूर्णता, शुद्धता एवं नियमानुकूलता की जांच करना है। तलपट के दोनों पक्षों के जोड़ का मिलान करना संस्था के **लेखापाल** (Accountant) का कार्य है। यदि लेखापाल तलपट का मिलान करने में असमर्थ रहता है तो यह कार्य अंकेक्षक को सौंपा जा सकता है। ऐसी स्थिति में अंकेक्षक एक लेखपाल के रूप में कार्य करता है तथा वह इस कार्य के लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकारी है।

अंकेक्षक जिन लेखों का अंकेक्षण करने जा रहा है, उनमें यदि कोई अशुद्धि हो जिसके कारण तलपट न मिलता हो तो उसे तलपट मिलाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाने चाहिये:

(i) **तलपट के जोड़ की जांच** (Checking of Total of Trial Balance): तलपट न मिलने का कारण उसके जोड़ में अशुद्धि हो सकती है, अत: सर्वप्रथम तलपट के दोनों पक्षों का जोड़ बड़ी सावधानी से करना चाहिये।

(ii) **अंतर की राशि ज्ञात करना** (To find the amount of Difference): यदि तलपट का जोड़ न मिलता हो तो सर्वप्रथम तलपट के दोनों पक्षों का अंतर ज्ञात करना चाहिए अर्थात् डेबिट पक्ष का योग क्रेडिट पक्ष के योग से कितना कम या अधिक है या क्रेडिट पक्ष का योग कितना कम या अधिक है यह मालूम करना चाहिए।

(iii) अंतर की राशि का आधा करना (Making the amount of Difference Half): अंतर की राशि का आधा करके देखना चाहिए कि इसके बराबर कोई मद तो नहीं है। संभव है कि यह राशि भूल से गलत पक्ष (Side) में लिख दी गई हो। यदि अभी भी अंतर न मिले तो उसे 9 से भाग करके देख लेना चाहिए। यदि भाग देने से संख्या पूरी तरह विभाजित हो जाये तो यह समझना चाहिए कि अंकों के **उलट-फेर** (Transposition) में कोई अशुद्धि है। जैसे- 928 के स्थान पर 289 अथवा 829 या 298 लिख देना। उदाहरण के तौर पर, 928 तथा 289 का अंतर 639 है जो 9 से पूरी तरह विभाजित हो जाता है। अत: यह गलती अंकों के उलट-फेर की है। ऐसा साधारणत: हो जाता है।

(iv) जर्नल की जांच (Checking of Journal): जर्नल में लिखी हुई समस्त प्रविष्टियों की जांच करके यह देखना चाहिए कि सभी प्रविष्टियों की डेबिट और क्रेडिट पक्ष की रकमें बराबर हैं या नहीं तथा जर्नल की सभी प्रविष्टियों को खातों में खतिया दिया गया है या नहीं।

(v) सहायक बहियों की जांच (Checking of Subsidiary Books): समस्त सहायक बहियों की जांच करके देख लेना चाहिए कि यह रकम ऐसी तो नहीं है जो **कच्ची बही** (Waste Book) से सहायक बही में लिखी गई हो। इसके अतिरिक्त सभी सहायक बहियों के जोड़ों की जांच करना चाहिए।

(vi) सहायक बहियों की खतौनी की जांच (Checking of Posting of Subsidiary Books): समस्त सहायक बहियों को पढ़कर यह देखना चाहिए कि उनमें ऐसी रकमें तो नहीं हैं जो खताने से रह गई हों। प्रत्येक बही के L.F. के खाने को देखने से इस त्रुटि का पता चल सकता है, क्योंकि जो रकमें नहीं खताई गई हैं उसके सामने खाते की पृ० संख्या लिखी हुई नहीं होगी।

(vii) खातों के शेषों की जांच (Checking of Balances of Ledger): खातों की जांच करके यह देखना चाहिए कि समस्त खातों के शेषों को तलपट में लिख लिया गया है या नहीं। हो सकता है कि किसी खाते के शेष को न लिखने के कारण ही जोड़ न मिल रहा हो। आगे लायी गई **राशियां** (Carry Fowards) का भी मिलान करना चाहिए।

(viii) प्रारंभिक लेखों की जांच (Checking of Opening Entries): प्रारंभिक लेखों की जांच करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि नवीन वर्ष में लाई गई सभी रकमें गत वर्ष के चिट्ठे की रकमों से मेल खाती हैं या नहीं क्योंकि प्रारंभिक प्रविष्टियां गत वर्ष के स्थिति विवरण से ही बनाई जाती हैं।

(x) गत वर्ष के तलपट से मिलान (Comparasion with last year's Trial Balance): यदि तलपट के जोड़ों में बहुत अधिक अंतर है तो उसकी जांच गत वर्ष के तलपट से ही मिलान करके हो सकती है और यदि दोनों तलपटों की राशि में भी कोई बड़ा अंतर हो तो उसकी जांच की जानी चाहिए। यदि कोई मद तलपट में लिखने से रह गई हो तो वह भी दोनों तलपटों का मिलान करने से प्रकट हो जायेगी।

यहां पर यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि तलपट के मिलने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हिसाब-किताब में कोई अशुद्धि नहीं है। अशुद्धियों का पता लगाने में अंकेक्षक को अपनी योग्यता एवं चातुर्य का प्रयोग करके गहन जांच करनी चाहिए।

(3) छल-कपटों का पता लगाना (Detection of Frauds): अंकेक्षक का उद्देश्य छल-कपटों का पता लगाना भी है। कपट उन त्रुटियों एवं भूलों का नाम है जो जान-बूझकर की जाती हैं और जिनका उद्देश्य संस्था को हानि पहुंचाना होता है। अत: **लेखों में जान-बूझकर योजनाबद्ध तरीके से तथा दूसरों को धोखा देने के उद्देश्य से की गई त्रुटियों एवं भूलों को छल-कपट कहते हैं।** छल-कपट हमेशा चतुर एवं जाल-साज व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। अत: कपटों को ढूंढ निकालना एक कठिन कार्य है। अंकेक्षक को इस बात का ज्ञान होना आवश्यक है कि छल-कपट कितने प्रकार का हो सकता है।

डिक्सी के अनुसार, **"कपट का पता लगाना अंकेक्षक के कर्तव्यों का महत्त्वपूर्ण भाग है जो अंकेक्षक कपटों का पता लगा लेता है वह ऐसे अंकेक्षक से अधिक अच्छा है जो कपटों का पता नहीं लगा सकता।"** सुविधा की दृष्टि से कपटों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है:

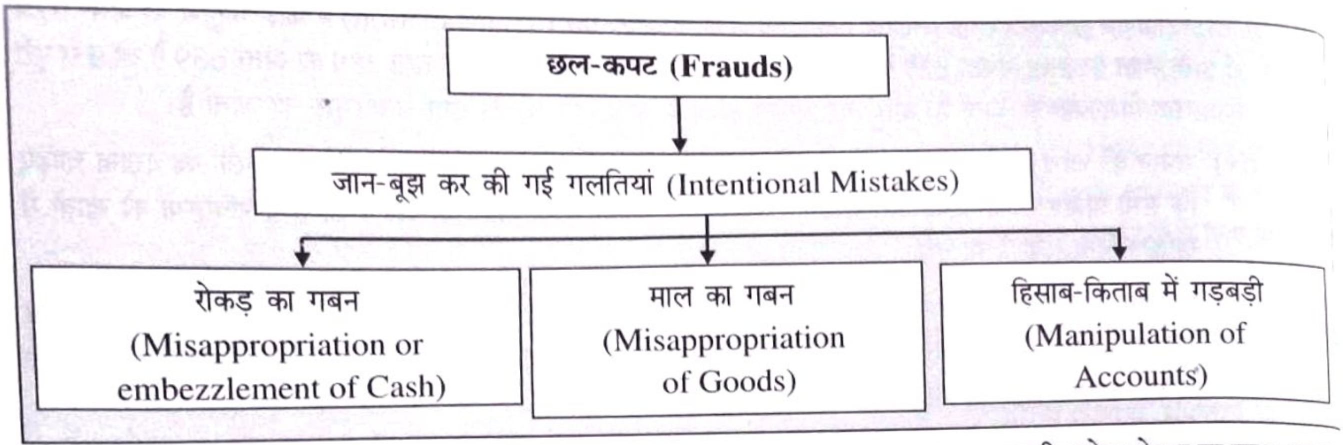

(अ) रोकड़ का गबन (Misappropriation or Embezzlement of Cash): माल की अपेक्षा रोकड़ का गबन आसान है क्योंकि रोकड़ थोड़े ही वजन में बहुत अधिक मूल्य रखती है। अत: चोरी करने वाले की अधिकतम रूचि रोकड़ के गबन में होती है। रोकड़ को व्यापार से बाहर ले जाना बहुत आसान है तथा द्वार पर खड़ा चौकीदार भी इसकी जांच नहीं कर सकता जबकि अन्य माल चुराने पर बेचने की दशा में पकड़े जाने की सम्भावना अधिक रहती है। रोकड़ का गबन निम्नलिखित ढंगों से किया जा सकता है:

(i) धन की असाधारण प्राप्तियों को हजम कर जाना और हिसाब में न दिखाना।

(ii) बिक्री को हिसाब में न दिखाकर आये हुए धन का गबन करना।

(iii) **बिक्री या वापसी की शर्त** (Sale or Return Basis) पर या वी.पी.पी. डाक से भेजे गए माल के संबंध में आई हुई रकम को जेब में डालकर माल को वापस किया हुआ दिखाना।

(iv) ग्राहक के लेखों में **छूट** (Discount), **वापसियों** (returns), **अप्राप्त धन** (Bad Debts) आदि के संबंध में काल्पनिक प्रविष्टियां दिखाकर प्राप्त रकम को अनुचित रूप से रख लेना।

(v) इधर की प्राप्ति उधर दिखाना अर्थात् एक देनदार से प्राप्त राशि को गबन करना तथा दूसरे देनदार से प्राप्त राशि को पहले देनदार के हिसाब में जमा करना तथा तीसरे देनदार से प्राप्त राशि को दूसरे देनदार के हिसाब में जमा करना। इस क्रम को **'लैपिंग'** (Lapping) अथवा **टीमिंग और लेडिंग** (Teaming and Lading) कहते हैं। इस प्रकार से एक निश्चित धनराशि बेईमान व्यक्तियों के हाथ में रहेगी।

(vi) चैक तथा अन्य **विनिमय-साध्य लेखपत्रों** (Negotiable Instruments) को गायब करना।

(vii) संस्था द्वारा प्राप्त आय का गबन करना और उसे बकाया दर्शाना।

(viii) झूठे दान व चन्दे आदि की प्रविष्टि करके राशि का गबन करना।

(ix) पुराने (न काम आने वाले) माल को बेचकर प्राप्त राशि को पुस्तकों में न लिखना जैसे अखबार की रद्दी इत्यादि।

(x) डूबत ऋण प्राप्ति को न दर्शाना

(xi) झूठे क्रय या खर्चों की झूठी रसीदें बनाकर रोकड़ का गबन करना।

(xii) **मज़दूरी सूचियों** (Wage Sheets) में मज़दूरों के **फर्जी नाम** (Fictitious Name) दिखाकर जैसे- आकस्मिक मज़दूरों की संख्या बढ़ाकर मज़दूरी की राशि का गबन करना।

रोकड़ के गबन को रोकने के लिए अंकेक्षक को चाहिये कि वह प्रत्येक प्राप्ति की जांच करे तथा प्रत्येक भुगतान का **प्रमाणक** (Voucher) देखे। प्रत्येक क्रय तथा विक्रय के बीजक का रोकड़ पुस्तक से मिलान करे तथा गबन का सन्देह होने पर उन सभी विधियों को अपनाए जिन्हें वह उचित समझता है।

(ब) माल का गबन (Misappropriation or Embezzlement of Goods): प्राय: यह देखा जाता है कि व्यापारिक संस्थाओं के मालिक जितना ध्यान धन के गबन की ओर देते हैं उतना माल के गबन की ओर नहीं देते। अत: कुछ कर्मचारी रोकड़ के स्थान पर माल का गबन ज्यादा सुरक्षित मानते हुए करते हैं। माल का गबन उन संस्थाओं में अधिक होता है जहां माल अधिक मूल्यवान और आकार में छोटा होता है।सरकारी संस्थाओं में इसका अत्यधिक प्रचलन है। माल का गबन निम्नलिखित ढंगों से किया जा सकता है:

(i) माल को स्टोर में से चुरा लेना।

(ii) कुछ ग्राहकों से मिलकर उनके नाम से काल्पनिक **जमा-पत्र** (Credit Note) उनको भेज देना तथा संबंधित माल को अपने पास रख लेना।

(iii) क्रय संबंधी प्रविष्टि करने के बाद खरीदे हुए माल को गोदाम या स्टोर में पहुंचने से पूर्व ही गायब कर देना।

(iv) माल का निजी कार्यों में प्रयोग करना।

(v) क्रय वापसी के नाम से कुछ माल निकालना तथा बहियों में प्रविष्ट न करना।

(vi) विक्रय वापसी के माल को गायब कर देना तथा पुस्तकों में प्रविष्ट कर देना।

माल का गबन कठिनाई से पकड़ा जा सकता है जैसे रोकड़ के गबन का पता लगाने के लिए अंकेक्षक को रोकड़ पुस्तक की सूक्ष्म जांच, **विक्रेता की रिपोर्ट** (Saleman's report), रसीद-बही के **प्रतिपर्ण** (Counterfoils) तथा अन्य प्रमाणकों से करना आवश्यक है, वैसे ही माल के गबन का पता लगाने के लिए उस माल के आवागमन पर उचित नियन्त्रण-प्रणाली का सहारा लेना होगा। माल का गबन व्यवस्थित लेखा-प्रणाली, क्रय तथा विक्रय पर उचित नियन्त्रण तथा समय-समय पर निरीक्षण की व्यवस्था द्वारा रोका जा सकता है।

(स) हिसाब-किताब में गड़बड़ी (Manipulation of Accounts): रोकड़ और माल का गबन न करके हिसाब-किताब में गड़बड़ी की जा सकती है। रोकड़ तथा माल का गबन प्राय: मध्य या निम्न श्रेणी के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है परंतु हिसाब-किताब में गड़बड़ी प्राय: संस्था के संचालकों, प्रबन्धकों अथवा अन्य उत्तरदायी अधिकारियों द्वारा की (कराई) जाती है। यह एक ऐसा कपट है जिसमें व्यापारिक लेन-देनों को हिसाब-किताब की पुस्तकों में इस प्रकार गलत तरीके से लिखा जाता है जिससे कि वे व्यापार की सही आर्थिक दशा का चित्रण न कर सकें। इस गड़बड़ी के कारण लाभ-हानि खाता और चिट्ठा दोनों ही गलत हो जाते हैं, परंतु गड़बड़ी के लिए उत्तरदायी अधिकारियों के लक्ष्य की पूर्ति अवश्य हो जाती है।

इस गड़बड़ी (कपट) के पीछे निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं:

(i) आयकर अथवा बिक्रीकर बचाना

(ii) व्यापारिक **प्रतिद्वन्दियों प्रति** (Competitors) से व्यापार की सही स्थिति छिपाना

(iii) लाभ पर दी जाने वाली कमीशन में बढ़ोत्तरी करने के उद्देश्य से लाभ बढ़ाना

(iv) व्यापार के सम्भावित विक्रय से लाभ उठाना, कम लाभांश घोषित करने अथवा कर्मचारियों को कम बोनस देने हेतु लाभ की मात्रा कम करना।

(vi) लाभांश की दर को स्थायी रखना।

(vii) ऋण प्राप्त करना।

हिसाब-किताब में गड़बड़ी निम्न विधियों से की जा सकती है:

(1) संपत्तियों पर ह्रास न काटना अथवा कम या अधिक काटना।

(2) संपत्तियों या दायित्वों का कम या अधिक मूल्यांकन करना।

(3) झूठे खर्चे दिखाना या वास्तविक खर्चे न दिखाना।

(4) किसी आय को हिसाब में शामिल न करना।

(5) पूँजीगत खर्चों को आयगत व आयगत खर्चों को पूँजीगत मानकर।

(6) झूठे क्रय-विक्रय अथवा वापसी दिखाना।

(7) उपार्जित आय को न दिखाकर तथा पूर्व प्राप्त आय को चालू वर्ष की आय मानकर।

(8) गुप्त संचय बनाकर।

(9) पुस्तकों को **सजाना** (Window dressing) अर्थात् व्यापारिक स्थिति को वास्तविक स्थिति से अच्छा दिखाना।

हिसाब-किताब में गड़बड़ी संबंधी छल-कपट का पता लगाना एक कठिन कार्य है क्योंकि ये योजनाबद्ध तरीके से उन व्यक्तियों द्वारा कराये जाते हैं, जो स्वयं छल-कपट रोकने के लिए उत्तरदायी माने जाते हैं तथा ऐसे व्यक्तियों को विश्वसनीय तथा ईमानदार समझा जाता है। अंकेक्षक को इस प्रकार के छल-कपट का पता लगाने के लिए संपत्तियों का प्रमाणन एवं सत्यापन करना चाहिए। प्रमाणन एवं सत्यापन एक अंकेक्षक के जासूसी कुत्ते हैं जिनकी सहायता से वह छल-कपट को सरलता से ही ढूंढ लेगा।

- **त्रुटियों तथा कपट को रोकना (Prevention of Errors and Frauds)**

यह तो असम्भव है कि अंकेक्षक त्रुटियों व छल-कपटों को पूर्णत: रोक दे। हां, इतना अवश्य है कि अंकेक्षक के नैतिक प्रभाव से त्रुटियों व छल-कपट बहुत हद तक समाप्त हो जाते हैं। अंकेक्षक को चाहिए कि वह उन त्रुटियों एवं छल-कपटों को ध्यान में रखे जो साधारणत: खातों में पाये जाते हैं तथा प्रत्येक लेन-देन की नैत्यक जांच करे। त्रुटियों व छल-कपट को रोकने में आंतरिक निरीक्षण की सुदृढ़ प्रणाली बहुत अधिक प्रभाव डालती है।

वास्तव में, त्रुटियों एवं छल-कपटों को रोकना तो कर्मचारियों के हाथ में है, किन्तु अंकेक्षक ऐसे सुझाव दे सकता है जिससे ये दोनों चीजें काफी हद तक दूर हो सकती हैं। यद्यपि कपटों का पता लगाया जा सकता है फिर भी ऐसे अवसर कम देने चाहिए कि कोई व्यक्ति कपट करे। इलाज की अपेक्षा बीमारी को रोकना ही श्रेष्ठ है। (Prevention is better than cure)। कुछ कपट इतनी बुद्धिमानी व चतुराई से किए जाते हैं कि उनका पता लगाना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है। किन्तु यदि अंकेक्षक लेनदेनों की विस्तृत जांच करे तो एक बड़ी सीमा तक कपटों को रोका जा सकता है। इसी उद्देश्य के लिए अंकेक्षण कराया जाता है।

- **III. अन्य उद्देश्य (Other Objects)**

उपरोक्त के अतिरिक्त अंकेक्षण के कुछ अन्य उद्देश्य भी हैं जो निम्न प्रकार हैं:

(1) कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव डालना (Morale Pressure on Employees): अंकेक्षण कार्य से कर्मचारियों के मन में हमेशा भ्रम उत्पन्न रहता है कि उनके द्वारा की गई गलती अथवा छल-कपट अंकेक्षक द्वारा पकड़ा न जाए। परिणामस्वरूप कर्मचारियों की नैतिकता में वृद्धि होती है। जिससे वे अपना कार्य इमानदारी से, सावधानीपूर्वक तथा समय पर करते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि गलती एवं छल-कपट होने की संभावना कम हो जाती है।

(2) सरकारी अधिकारियों को संतुष्ट करना (To Satisfy the Government Officers): वैधानिक तौर से एकाकी व्यापारी तथा साझेदारी फर्म का अंकेक्षण अनिवार्य नहीं है फिर भी यह संस्थाएं अंकेक्षण करवाती हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य यह होता है कि आय-कर व बिक्री-कर अधिकारीगण यह विश्वास कर लें कि लेखा-पुस्तकों द्वारा प्रदत सूचनाएं ठीक हैं तथा वे आयकर व बिक्रीकर निर्धारण में अधिक परेशानी पैदा न करें।

(3) वैधानिक आवश्यकता को पूरा करना (Fulfilment of Legal Requirements): अंकेक्षण का कार्य करते समय अंकेक्षक को यह देखना होता है कि संस्था की लेखा-पुस्तकें एवं विवरण वैधानिक नियमानुसार बनाये गए हैं अथवा नहीं। उदाहरणार्थ कम्पनी की लेखा-पुस्तकों का अंकेक्षण वैधानिक रूप से अनिवार्य होता है एवं अधिनियम की व्यवस्थाओं का पालन करना भी अनिवार्य है। अत: अंकेक्षक को यह देखना चाहिए कि लाभ-हानि खाता एवं चिट्ठा संस्था की वास्तविक स्थिति को प्रकट करते हैं या नहीं।

■ 2. अशुद्धि एवं कपट में अंतर (Difference between Error and Fraud)

अशुद्धि एवं कपट में कुछ समानता पायी जाती है वह यह कि दोनों स्थिति में वह संस्था की **सही एवं उचित** (True and Fair) स्थिति नहीं दर्शाते हैं। फिर भी इनमें कुछ अंतर है जो कि निम्नलिखित हैं:

क्रम संख्या (S.N.)	अंतर का आधार (Basis of Difference)	अशुद्धि (Error)	कपट (Fraud)
1.	**ज्ञान** (Knowledge)	अशुद्धि अर्थात त्रुटि करने वाले को इस बात का ज्ञान नहीं होता कि वह अशुद्धि कर रहा है।	कपट करने वाले को इस बात का ज्ञान होता है कि वह कपट कर रहा है।
2.	**इरादा** (Intention)	अशुद्धि प्रायः अनजाने में संयोगवश हो जाती है क्योंकि अशुद्धि करने वाले का यह इरादा कभी नहीं होता कि वह अशुद्धि करे।	कपट करने वाला व्यक्ति जान-बूझकर दूसरे पक्ष को धोखा देने के इरादे से छल-कपट करता है।
3.	**कारण** (Reason)	अशुद्धि प्रायः असावधानी से होती है।	कपट हमेशा सावधानी से किया जाता है। बिना सावधानी के कपट नहीं किया जा सकता।
4.	**योजना** (Plot or Planning)	इसमें व्यक्ति इस प्रकार की योजना बनाते हैं जिससे अशुद्धियां कम से कम हों।	इसमें व्यक्ति पहले गबन करने की योजना बनाता है अर्थात् षड्यंत्र (Plot) रचता है फिर उसे कार्यान्वित करता है।
5.	**परिणाम** (Result)	अशुद्धियों का परिणाम कुछ निश्चित नहीं होता। इसमें संस्था को लाभ भी हो सकता है और हानि भी।	कपट का परिणाम निश्चित होता है। इसमें एक पक्ष को लाभ तथा दूसरे पक्ष को हानि होती है।
6.	**अपराध** (Crime)	मनुष्य से गलतियां हो ही जाती हैं; अतः गलती होना कोई अपराध नहीं है। यदि उचित सावधानी के बाद भी गलती हो जाए तो इसे माफ किया जा सकता है।	कपट जान-बूझकर किया जाता है। अतः यह अपराध है जो कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता।
7.	**पता लगाना** (Detection)	अशुद्धियों का पता लगाना आसान होता है।	कपट का पता लगाना बहुत कठिन होता है क्योंकि कपट करने वाला व्यक्ति चतुराई से कपट करता है।

■ 3. अशुद्धियों तथा छल-कपट के संबंध में अंकेक्षक के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व (Duties and Responsibilities of Auditor Regarding Errors and Frauds)

Or

■ छुपी हुई गलती तथा कपट के संबंध में अंकेक्षक का दायित्व (Auditor's Responsibility with regard to undetected Error and Fraud)

साधारणतः यह आम धारणा है कि अशुद्धियों (त्रुटियों) तथा छल-कपटों का पता लगाना ही अंकेक्षक का प्रमुख कर्तव्य व दायित्व है। परन्तु प्रश्न यह है कि एक अंकेक्षक अशुद्धियों एवं छल-कपटों के प्रति कहां तक जिम्मेदार है। अंकेक्षक का कार्य अशुद्धियों एवं छल-कपटों का पता लगाना तथा इन्हें रोकना है ताकि ये भविष्य में न हो पायें।

अशुद्धियों एवं छल-कपट का पता लगाना: अशुद्धियों तथा छल-कपटों का पता लगाने के लिए अंकेक्षक को बड़ी सावधानी और सतर्कता से कार्य करना चाहिए। उसे विभिन्न लेखा-पुस्तकों तथा प्रमाण-पत्रों की गहन जांच करनी चाहिए। यही नहीं बल्कि उसे बेईमानी तथा खातों में होने वाली सब प्रकार की गड़बड़ी के तरीकों का ज्ञान होना चाहिए। जहां कहीं भी छल-कपट का सन्देह हो अंकेक्षक को सतर्कता तथा कुशलता से जांच करनी चाहिए जिससे होने वाले छल-कपटों का वास्तविक स्वरूप पता लग सके। अंकेक्षक का यह कर्तव्य बन जाता है कि मामले की पूर्ण जांच-पड़ताल करे जिससे कि वह ठीक निष्कर्ष पर पहुँच सके। उसे तर्कपूर्ण प्रश्न करने चाहिए और मामले की तह तक पहुंचने का प्रयास करना चाहिए।

इस प्रकार गहन जांच करने का कार्य अंकेक्षक का परम कर्तव्य हो जाता है। उसे अपना कार्य अत्यन्त सावधानी, बुद्धिमत्ता, कुशलता एवं कर्तव्यपरायणता से पूर्ण करना चाहिए। यह सब करते हुए भी यदि अशुद्धियां तथा छल-कपट का पता लगाने में असमर्थ रहता है तो वह उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। उसका कर्तव्य केवल गहन जांच करने तक ही सीमित है। किन परिस्थितियों में कितनी जांच गहन होगी इसका अनुमान अंकेक्षक के विवेक पर निर्भर होता है। अपनी बुद्धिमत्ता से गहरी जांच करने के पश्चात् जो खाते उसने सही प्रमाणित कर दिये है, यदि वे गलत निकलते है तो वह उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। छल-कपट को ढूंढने में अंकेक्षक का दायित्व तभी उत्पन्न होता है जबकि उसने अपने कार्य में लापरवाही की हो।

अशुद्धियों एवं छल-कपट को रोकना: यह सोचना एक भ्रांत धारणा होगी कि अंकेक्षक त्रुटियों तथा छल-कपटों को पूरी तरह से रोक सकता है। उसके द्वारा की जाने वाली जांच से संस्था के कर्मचारियों पर एक नैतिक भय पैदा हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप छलकपट कम हो जाते हैं। यद्यपि एक सुयोजित अंकेक्षण कार्यक्रम और परिश्रम से किये हुए अंकेक्षण से गलतियों तथा छल-कपटों का पता लग सकता है, तथापि आन्तरिक निरीक्षण की कुशल-व्यवस्था होना जरूरी है। सच बात तो यह है कि त्रुटियों तथा छल-कपटों की रोक-थाम संस्था के कर्मचारियों की कार्यक्षमता व ईमानदारी पर निर्भर करती है। तथापि अंकेक्षक कुछ ऐसा सुझाव दे सकता है जिससे त्रुटिया व छल-कपट कम से कम हों। अच्छी सलाह देना उसका कर्तव्य है मगर उसके अनुसार कार्य करने की जिम्मेदारी संबंधित संस्था के कर्मचारियों की है। यदि वे उसकी सलाह के अनुसार चलते हैं तो भविष्य में ये गलतियां तथा छल-कपट कम हो सकते हैं।

यदि अंकेक्षण के कार्य समाप्त हो जाने के पश्चात् कोई गबन प्रकट होता है तो इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं है कि अंकेक्षक लापरवाह रहा है या उसने पूर्णरूप से अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है। अंकेक्षक यह गारन्टी नहीं देता कि लेखों के संबंध में अपनी रिपोर्ट पर एक बार हस्ताक्षर करने का अर्थ यह है कि कोई कपट मौजूद नहीं है। यदि अंकेक्षक ने अपने कार्य में इतनी सावधानी, कुशलता और बुद्धिमानी का प्रयोग किया है, जितना कि उन परिस्थितियों में सम्भव था और उसने कोई ऐसा प्रयत्न नहीं छोड़ा है, जो कि उन त्रुटियों और कपटों को ढूंढने के लिए आवश्यक था और फिर भी वह त्रुटियों एवं कपटों का पता लगाने में असमर्थ रहा है तो वह उत्तरदायी नहीं होगा। इस सबंध में निम्न तीन मामले वर्णनीय है:

लन्दन एण्ड जनरल बैंक (London and General Bank) के मामले में यह कहा गया है कि, **''अंकेक्षक को ईमानदार होना चाहिए। उसे ऐसी किसी भी बात को सत्य प्रमाणित नहीं करना चाहिये जिसे वह सत्य नहीं समझता। सत्यता का प्रमाण-पत्र देने से पहले उसे उचित सावधानी एवं चतुराई से कार्य करना चाहिए।''**

सिटी इक्वीटेबल फायर इन्श्योरेन्स कम्पनी (City Equitable Fire Insurance Co.) के मामले में यह कहा गया है कि **"अगर एक अंकेक्षक, किसी एक मामले में भी, अंकेक्षक के कठिन कर्तव्य के स्तर से नीचे गिर जाता है, उसे केवल इसलिए ही माफ नहीं किया जा सकता कि उसने अन्य सारा कार्य करने में उच्चतम सतर्कता, परिश्रम तथा ज्ञान का प्रयोग किया है।"**

किंग्सटन कॉटन मिल्स कम्पनी (Kingston Cotton Mills Co.): विवाद के फैसले से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि **"शंकायुक्त परिस्थितियों के अभाव में यदि अंकेक्षक ऐसे गबनों को नहीं पकड़ पाता है जोकि संस्था के विश्वासी कर्मचारियों द्वारा सावधानी एवं चतुराईपूर्वक योजनाबद्ध ढंग से किये गए हैं तो उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।"** अंकेक्षक का कर्तव्य अनावश्यक रूप से सन्देहशील (Suspicious) होना नहीं है. वह एक जासूस नहीं है जो प्रत्येक अवस्था में सन्देहशील होकर इस पूर्व धारणा से कार्य करे कि लेखा-पुस्तकों में कुछ न कुछ गड़बड़ी अवश्य हुई है. उसकी स्थिति एक **रखवाली करने वाले कुत्ते (Watch Dog)** के समान है न कि **शिकारी कुत्ते** (Blood Hound) के समान। उसे संस्था के कर्मचारियों को ईमानदार मानने का अधिकार है।

■ 4. अंकेक्षण के लाभ (Advantages of Audit)

वर्तमान युग में जबकि व्यापार एवं उद्योग बड़े पैमाने पर अपना व्यवसाय कर रहे है तो अंकेक्षण का महत्व बढ़ जाना स्वाभाविक है। व्यापार एवं उद्योग में पूँजी का विनियोग बढ़ने तथा प्रबन्ध एवं स्वामित्त्व का पृथकीकरण होने के कारण अंकेक्षण की आवश्यकता स्पष्ट दिखाई देने लगी है। प्रत्येक बाहरी व्यक्ति चाहे वह ऋण देने वाला हो, आयकर अथवा बिक्रीकर अधिकारी हो या व्यापार का खरीदार हो, अंकेक्षित हिसाब-किताब को अधिक विश्वसनीय मानता है। यही नहीं बल्कि न्यायालय में प्रमाण उपस्थित करने के लिए अथवा लाईसेन्स प्राप्त करने के लिए भी अंकेक्षित खाते अधिक मान्य होते हैं। अत: सभी बड़े व्यवसायी चाहे वह एकाकी व्यापारी हों या साझेदारी, अपने हिसाब-किताब का अंकेक्षण कराते हैं। कम्पनी का अंकेक्षण तो कानून द्वारा अनिवार्य कर दिया गया है। व्यवसाय में देखा जाए तो प्रत्येक व्यवसाय के लिए अंकेक्षण का समान महत्व है और यही कारण है कि ऐसे व्यावसायी भी जिनके लिए अंकेक्षण कराना अनिवार्य नहीं है अपने खातों का अंकेक्षण कराते हैं। अंकेक्षण के विभिन्न लाभ निम्न प्रकार हैं:

I. सामान्य लाभ (General Advantages): अंकेक्षण के सामान्य लाभ निम्नलिखित हैं:

(i) व्यापार की वास्तविक स्थिति का ज्ञान (Knowledge of Actual Position of the Business): अंकेक्षण से व्यापार की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता है। व्यापार के स्वामी को यह विश्वास हो जाता है कि जो भी परिणाम लाभ-हानि खाते तथा चिट्ठे द्वारा दिखाया गया है, वह ठीक है।

(ii) अशुद्धियों एवं छल-कपट का पता लगाना (Detection of Errors and Fraud): अंकेक्षण कार्य में लेखों की जांच के दौरान अशुद्धियों एवं छल-कपट का पता लग जाता है। इससे भविष्य में छल-कपट एवं अशुद्धियों की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं।

(iii) कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव (Morale Pressure on Employees): जब कर्मचारियों को इस बात का पता होता है कि उनके द्वारा किए गए कार्य की जांच एक स्वतन्त्र व्यक्ति द्वारा की जाएगी तो उनमें एक परोक्ष भय बना रहता है जिससे वह अपना कार्य नियमित रूप से कुशलतापूर्वक तथा सावधानी से करते हैं। वे कोई भी गलत कार्य या लापरवाही करने का साहस नहीं करते। परिणामस्वरूप अशुद्धियों एवं छल-कपट की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं।

(iv) कर्मचारियों एवं प्रबन्ध में सतर्कता (Alertness in Employees and Management): अंकेक्षण कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों को अपने कार्य में सतर्क करता है क्योंकि इसका परिणाम **स्वस्थ आलोचना** (Healthy Criticism) होता है। कर्मचारी अनुशासित होकर अच्छी परम्पराओं एवं प्रक्रियाओं का पालन करते हैं। कार्य नियमित रूप से पूरा हो जाता है। अंकेक्षण के नियन्त्रण से भ्रष्टाचार समाप्त किया जा सकता है तथा कर्मचारियों की सच्चाई एवं योग्यता का प्रमाण मिलता है।

(v) व्यापार का उचित मूल्यांकन (Proper Valuation of Business): यदि किसी व्यापार का विक्रय करना हो या किसी फर्म को कम्पनी के रूप में बदलना हो तो अंकेक्षित खाते उचित मूल्यांकन व **ख्याति की गणना** (Valuation of Goodwill) में सहायक होते हैं। वास्तव में अंकेक्षित खाते अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं।

(vi) ख्याति में वृद्धि (Increase in Goodwill): जो संस्थायें अपने खातों का अंकेक्षण कराती हैं उनके लेखों पर जन... को अधिक विश्वास होता है जिससे संस्था की ख्याति बढ़ती है। ख्याति बढ़ने से संस्था को बैंकों अथवा अन्य वित्... संस्थाओं से ऋण आदि प्राप्त करने में बहुत आसानी रहती है।

(viii) क्षतिपूर्ति में सहायक (Helpful in Compensation): यदि अग्नि, चोरी आदि दुर्घटनाएं घटित हो जाती हैं तो बीमा कम्पनियों से क्षतिपूर्ति कराने हेतु अंकेक्षित खाते अधिक सहायक सिद्ध होते हैं।

(ix) कर-निर्धारण में सहायक (Helpful in Assesstment of Tax): अंकेक्षित खातों के आधार पर कर-निर्धारण आसान हो जाता है अन्यथा कर अधिकारी मनचाहा कर लगा देते हैं। अतः अनियमित व मनचाहा कर निर्धारण (Arbitrary Assessment) रोकने के लिए अंकेक्षित खाते सहायक सिद्ध होते हैं।

(x) दिवालिया घोषित करवाने में सहायक (Helpful in getting declared Insolvent): जब व्यापार की दशा इतनी खराब हो जाती है कि दायित्व संपत्तियों की तुलना में अधिक हो जाते हैं तब व्यापारी अपने को दायित्व से मुक्त कराने के लिए दिवालिया घोषित करवाना चाहता है। ऐसा करवाने के लिए अंकेक्षित खातों द्वारा दिखाया गया विवरण न्यायालय द्वारा अधिक मान्य होता है।

(xi) लाभांश एवं बोनस योजना में सहायक (Helpful in Dividend and Bonus Plan): लेखों का अंकेक्षण कराने लेने से लाभ-हानि खाते की सत्यता का प्रमाण-पत्र मिल जाता है जिससे की लाभांश वितरण करने में कठिनाई नहीं होती है तथा बोनस का भी ठीक वितरण हो जाता है क्योंकि अंशधारी और मज़दूर सभी अंकेक्षित खातों में दर्शाए गए लाभ को सही मानते हैं तथा विश्वास करते हैं।

(xii) बहुमूल्य सुझाव की प्राप्ति (Availability of Valueable Suggestions): अंकेक्षक समय-समय पर अपने नियोक्ता को पुस्तपालन एवं लेखाकर्म के संबंध में नये-नये सुझाव देता रहता है जिससे कि त्रुटियां व गबन न हो सकें। इसके अतिरिक्त आर्थिक एवं अन्य मामलों में भी अंकेक्षक की सलाह बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

II. विभिन्न संस्थाओं को लाभ (Advantages to Various Organisations):

(अ) **एकाकी व्यापार को** (To Sole Trade): उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त एकाकी व्यापार को अंकेक्षण से निम्नलिखित लाभ है:

(i) न्यायालय में प्रमाण (Proof in Court): यदि किसी व्यापारिक विवाद से संबंधित तथ्य लेखों द्वारा ही साबित करना हो तो अंकेक्षित लेखों को न्यायालय में प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है। भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश एम. हिदायत-उल्ला के अनुसार, **"जब अंकेक्षक द्वारा प्रमाणित किए गए लेखे न्यायालय में प्रस्तुत किए जाते हैं तो न्यायाधीश को यह विश्वास हो जाता है कि ये लेखे सत्य हैं।"**

(ii) व्यापार को साझेदारी में बदलने में सहायक (Helpful in conversion of Business into partnership): यदि एकाकी व्यापारी अपना व्यापार साझेदारी में बदलना चाहता है अर्थात किसी अन्य व्यक्ति को अपने व्यापार में साझेदार बनाना चाहता है अथवा स्वयं किसी फर्म का साझेदार बनना चाहता है तो अंकेक्षित खाते सहायक सिद्ध होते हैं।

(iii) तुलनात्मक अध्ययन सम्भव (Comparative Study Possible): यदि विभिन्न वर्षों के लेखों की तुलना करने की आवश्यकता पड़े तो इन वर्षों की अंकेक्षण रिपोर्ट के आधार पर ही एक वर्ष के लेखों की तुलना दूसरे वर्ष के लेखों से की जा सकती है। इससे लाभ-हानि तथा आय-व्यय का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है।

(iv) संपत्ति कर निर्धारण में सहायक (Helpful in Assessment of Wealth Tax): यदि एकाकी व्यापारी की संपत्तियां अधिक हैं तथा उसकी मृत्यु (Death) के पश्चात् उसकी संपत्ति पर मृत्युकर लगना है तो ऐसी स्थिति में अंकेक्षित खाते अधिक सहायक होते हैं।

(v) आयकर व बिक्री कर निर्धारण में सहायक (Helpful in Assessement of Income Tax and Sales Tax): आयकर व बिक्रीकर का निर्धारण करते समय संबंधित अधिकारीगण अंकेक्षित लेखों पर अधिक विश्वास करते हैं।

(ब) साझेदारी व्यापार को (To Partnership Business): अंकेक्षण के पूर्व वर्णित सामान्य लाभों के अतिरिक्त एक साझेदारी व्यापार को निम्नलिखित अतिरिक्त लाभ भी होते हैं:

(i) साझेदारों में परस्पर विश्वास (Mutual Confidence amoung partners): साझेदारी फर्म के कार्य-संचालन में सभी साझेदार भाग नहीं लेते। यदि साझेदारी फर्म के खातों का अंकेक्षण करा लिया जाता है तो उनमें परस्पर विश्वास बना रहता है। यदि फर्म में **निष्क्रिय साझेदार** (Sleeping Partners) भी है तो ऐसी दशा में फर्म के खातों का अंकेक्षण और भी अधिक आवश्यक हो जाता है क्योंकि उन्हें व्यापार के बारे में पूरा ज्ञान नहीं होता। अत: अंकेक्षित खाते होने पर लाभ बांटते समय साझेदारों में होने वाले आपसी झगड़ों की संभावना कम हो जाती है तथा फर्म का कार्य सुचारू रूप से चलता रहता है।

(ii) व्यापार एवं ख्याति के मूल्यांकन में सहायक (Helpful in Valuation of Business and Goodwill): किसी नये साझेदार के फर्म में प्रवेश के समय, किसी साझेदार के फर्म से **अवकाश ग्रहण** (Retirement) करते समय अथवा किसी साझेदार की मृत्यु होने पर फर्म के व्यापार अर्थात फर्म की संपत्ति एवं दायित्व का मूल्यांकन करने तथा फर्म की ख्याति का मूल्यांकन करने में अंकेक्षित खाते सहायक सिद्ध होते हैं।

(iii) हिसाब-किताब का शांतिपूर्ण निबटारा (Peaceful Settlement of Account): साझेदारी फर्म की समाप्ति होने पर अंकेक्षित हिसाब-किताब के आधार पर साझेदारों के बीच संपत्तियों एवं दायित्वों की राशि का बंटवारा शांतिपूर्ण ढंग से हो जाता है।

(स) संयुक्त पूँजी कम्पनी को (To Joint Stock Company): अंकेक्षण के सामान्य लाभों के अतिरिक्त कम्पनी को निम्नलिखित अतिरिक्त विशेष लाभ प्राप्त होते हैं।

(i) अंशधारियों में प्रबन्ध के प्रति विश्वास (Confidence among Shareholders Towards Management): कम्पनी में प्रतिनिधि प्रबन्ध व्यवस्था (Representative Management) होती है। कम्पनी का प्रबन्ध केवल कुछ चुने हुए अंशधारियों (संचालकों) के हाथ में होता है। बाकी अंशधारी कम्पनी के कार्यालय से कोसों दूर रहते हैं। अत: कम्पनी प्रबन्धक अंकेक्षण की सहायता से ही अंशधारियों को इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि उन्होंने अपना कार्य सुचारु रूप से किया है तथा वे अपने पद का किसी प्रकार दुरुपयोग नहीं कर रहे हैं।

(ii) विनियोग की सरल प्राप्ति (Easy Availability of Investment): कम्पनी अपनी पूँजी अंशों एवं ऋणपत्रों को जनता में बेचकर प्राप्त करती है। अंकेक्षित खातों के आधार पर जनता विश्वास करके कम्पनी में अपनी पूँजी विनियोग करती है।

(iii) लाभांश घोषणा में सहायता (Help in Declaration of Dividend): चूंकि अंकेक्षक कम्पनी के लाभ को प्रमाणित करता है। अत: लाभांश की घोषणा एवं वितरण में शंकाएं पैदा नहीं होती हैं। अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में यह प्रमाणित करना होता है कि लाभांश उचित दर से घोषित एंव वितरित किया गया है।

(iv) कम्पनियों के सम्मिश्रण, संविलयन व पुनर्निर्माण में सुविधा (Facility in Amalgmation, Absorption and Reconstruction of Companies): जब कभी कम्पनियों का सम्मिश्रण, संविलयन अथवा पुनर्निर्माण होता है तो कम्पनी का क्रय-मूल्य निर्धारण करने में अंकेक्षित खातों द्वारा बहुत सहायता मिलती है। ऐसे कार्य में अंकेक्षित खाते अधिक विश्वसनीय माने जाते हैं।

(द) अन्य व्यक्तियों को (To Other Persons): अन्य व्यक्तियों को अंकेक्षण से निम्नलिखित लाभ हैं:

(i) अन्य व्यक्तियों के हित के लिए जब कोई संपत्ति किसी **प्रन्यास** (Trust) के सुपुर्द होती है तो **प्रन्यासी** (Trustees) खातों के अंकेक्षण से अपनी स्थिति दूसरों के समक्ष स्पष्ट कर सकते हैं कि उन्होंने प्रन्यास का प्रबन्ध ईमानदारी से किया है।

(ii) बीमा कम्पनी के लिए व्यापार के अंकेक्षित खाते उस समय सहायक होते हैं जब अग्नि-क्षति हो जाने पर इस हानि का अनुमान लगाया जाता है। संस्था के अंकेक्षित खातों के आधार पर बीमा कम्पनियां यह विश्वास कर लेती हैं कि संस्था के द्वारा किया गया क्षति का दावा (Claim) सही है। खातों के अंकेक्षण न होने पर यह कठिनाई सामने आ सकती है।

(iii) ऋण देने वाला बैंक अथवा व्यापारिक संस्था भी प्रमाणित हिसाब-किताब की सहायता से ऋण देने के संबंध में निर्णय ले सकते है।

(iv) यदि कोई बाहरी व्यक्ति किसी संस्था को खरीदना चाहे तो उसका क्रय-मूल्य तय करने में अंकेक्षित हिसाब से सहायता मिलती है। अंकेक्षित तथा प्रमाणित हिसाब-किताब के आधार पर क्रेता को **क्रय-मूल्य** (Purch... consideration) निकालने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

(v) सरकारी अधिकारियों के लिए, बिक्री-कर, आयकर, संपत्ति-कर या व्यय-कर लगाते समय प्रमाणित हिसाब-किताब लाभदायक होते है।

(vi) न्यायालय किसी मुकदमे के संबंध में इन अंकेक्षित पुस्तकों पर विश्वास कर सकता है। अंकेक्षित खाते प्रस्तुत किए ... पर न्यायालय के सम्मुख अपने पक्ष की ओर से अच्छा प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है।

■ 5. अंकेक्षण की सीमाएं (Limitations of Audit)

अंकेक्षक का कार्य नियोक्ता या उसके कर्मचारियों द्वारा तैयार किए गए खातों एवं विवरणों का सत्यापन करना होता है। उसकी नियुक्ति हिसाब-किताब की जांच करके उसके संबंध में यह प्रमाणित करने के लिए की जाती है कि संस्था के लेखे नियमानुसार बनाए ... है तथा लाभ-हानि खाता और चिट्ठा संस्था की सही एवं वास्तविक आर्थिक स्थिति प्रकट करते हैं। अत: यदि अंकेक्षक किसी संस्था ... लाभ-हानि खाते व चिट्ठे से संतुष्ट हो जाता है तथा अंकेक्षण के दौरान उसे किसी विपरीत बात का पता नहीं चलता, तो वह लेखों अर्थात् लाभ-हानि खाते तथा चिट्ठे की सत्यता एवं औचित्य को प्रमाणित कर देता है। अंकेक्षक द्वारा अपनी पूरी योग्यता, चातुर्य तथा सावधानी ... बावजूद अंकेक्षित हिसाब-किताब में कुछ अशुद्धियां तथा छल-कपट सामने आने से छूट सकते हैं। अत: अंकेक्षक की रिपोर्ट के आधार पर किसी निर्णय पर पहुंचने से पूर्व अंकेक्षण की निम्न सीमाओं का भी ध्यान रखना चाहिये।

(1) अंकेक्षण कर्मचारियों की ईमानदारी का निश्चयात्मक प्रमाण नहीं है (Auditing is not a conclusive Proof of honesty of the employees): यदि संस्था में आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली अपनाई जाती है और अंकेक्षक इस प्रणाली से संतुष्ट है तो वह परीक्षण-जांच (Test-checking) का सहारा लेकर लेखों को सत्य प्रमाणित कर देता है। आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली में भी दो या अधिक कर्मचारी मिलकर कपट कर सकते हैं, जो अंकेक्षण के दौरान सामने नहीं आ पाता। अत: अंकेक्षण हो जाने का यह अर्थ नहीं है कि संस्था के कर्मचारियों ने उस अवधि में ईमानदारी से कार्य किया है।

(2) अंकेक्षण शत-प्रतिशत शुद्धता की गारन्टी नहीं है (Auditing is not Guarantee of cent-percent accuracy): प्राय: अंकेक्षण कार्य बड़ी संस्थाओं द्वारा ही कराया जाता है जिनमें एक वित्तीय वर्ष में व्यापारिक लेन-देन काफी अधिक संख्या में होते हैं। अत: एक अंकेक्षक के लिए इन समस्त व्यवहारों की गहन जांच करना सम्भव नहीं है और समय, श्रम व धन के व्यय के दृष्टिकोण से भी यह अधिक व्यावहारिक नहीं है। ऐसी दशा में अंकेक्षक द्वारा परीक्षण जांच का सहारा लेने से कुछ गलतियों का छूट जाना स्वभाविक है।

(3) छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता (Minor Things are not given attention): अंकेक्षक अपनी जांच के दौरान केवल लाभ-हानि खाते तथा चिट्ठे से संबंधित बातों पर ही पूरा ध्यान देता है। वह अत्यन्त छोटे व्यवहारों अथवा संस्था के निम्न श्रेणी के कर्मचारियों द्वारा किए गए व्यवहारों पर विशेष ध्यान नहीं देता। अत: यह सम्भव है कि निम्न स्तर पर कुछ छोटी-छोटी अनियमितताएं अंकेक्षण के वाबजूद रह जाएं।

(4) कुछ छल-कपट अप्रकट रह सकते हैं (Certain frauds may remain undetected): अंकेक्षक द्वारा अपना कार्य पूर्ण योग्यता, उचित सावधानी एवं कुशलता से करने के बावजूद संस्था के उच्च प्रबन्धकों अथवा विश्वसपात्र कर्मचारियों द्वारा जानबूझकर योजनाबद्ध तरीके से किए गए कुछ छल-कपट अंकेक्षक की पकड़ में आने से छूट जाते है

(5) अंकेक्षक सभी व्यापारिक व्यवहारों की प्रकृति नहीं समझता (Auditor does not understand nature of all business transactions): यद्यपि अंकेक्षक विभिन्न प्रकार के कार्य करने वाली संस्थाओं के लेखों की जांच करता है परंतु उन सब व्यापारों के व्यवहारों की प्रकृति का ज्ञान उसे होना आवश्यक नहीं है। अत: अंकेक्षक के लिए यह सम्भव

नहीं है कि वह यह प्रमाणित कर सके कि कोई व्यावहार व्यापारिक दृष्टिकोण से उचित है या नहीं। इसलिए हम कह सकते हैं कि अंकेक्षण के दौरान व्यवहार की केवल वैधानिकता की जांच की जाती है, व्यापारिक औचित्य की नहीं।

(6) अंकेक्षक केवल अपनी राय प्रकट करता है (Auditor Merely expresses his opinion): संस्था के हिसाब-किताब के बारे में अंकेक्षक केवल अपनी राय प्रकट करता है। उसके द्वारा लाभ-हानि खाते तथा चिट्ठे के बारे में सही होने की राय देने का यह अर्थ नहीं है कि लेखों में गड़बड़ी नहीं हो सकती। वैसे अंकेक्षक यह राय उचित जांच के बाद ही देता है परंतु फिर भी वह एक मनुष्य है और मनुष्य से गलती सम्भव है।

(7) भारत में अंकेक्षक को व्यावहारिक स्वतन्त्रता नहीं है। (Auditor does not enjoy Practical freedom in India): वैसे तो अंकेक्षक को एक स्वतन्त्र व्यक्ति माना गया है क्योंकि उसके अधिकार, कर्तव्य एवं दायित्व कम्पनी विधान द्वारा निश्चित होते हैं। परंतु व्यवहार में कम्पनी के प्रबन्धक अपने व्यक्तियों को ही कम्पनी का अंकेक्षक नियुक्त कराते हैं। अत: अंकेक्षक कम्पनी के प्रबन्धकों के प्रभाव में रहता है तथा प्रबन्धकों को नाराज करके वह व्यावहारिक तौर पर पूर्णत: निष्पक्ष जांच करके रिपोर्ट नहीं दे पाता।

प्रश्न

अंकेक्षण के प्रकार
(TYPES OF AUDIT)

अंकेक्षण का वर्गीकरण निम्न दो आधारों पर किया जा सकता है:

I. व्यवसाय के संगठन की दृष्टि से, तथा II. व्यावहारिक दृष्टि से।

■ I. व्यवसाय के संगठन की दृष्टि से (According to the Organisation of Business)

व्यवसाय के संगठन की दृष्टि से अंकेक्षण के निम्न रूप हो सकते हैं:

1. वैधानिक अंकेक्षण (Statutory Audit)
2. निजी अंकेक्षण (Private Audit)
3. सरकारी अंकेक्षण (Government Audit)
4. आंतरिक अंकेक्षण (Internal Audit)।

■ II. व्यावहारिक दृष्टि से (According to Practical Way)

व्यावहारिक दृष्टि से अंकेक्षण के निम्न रूप हो सकते हैं:

1. पूर्ण अंकेक्षण (Complete Audit)
2. आंशिक अंकेक्षण (Partial Audit)
3. चालू अंकेक्षण (Continuous Audit)
4. सामयिक, वार्षिक या अंतिम अंकेक्षण (Periodical, Annual or Final Audit)
5. अंतरिम अंकेक्षण (Interim Audit)
6. रोकड़ अंकेक्षण (Cash Audit)
7. लागत अंकेक्षण (Cost Audit)
8. प्रबन्ध अंकेक्षण (Management Audit)।

अंकेक्षण के वर्गीकरण को निम्नलिखित चार्ट की सहायता से भी प्रदर्शित किया जा सकता है:

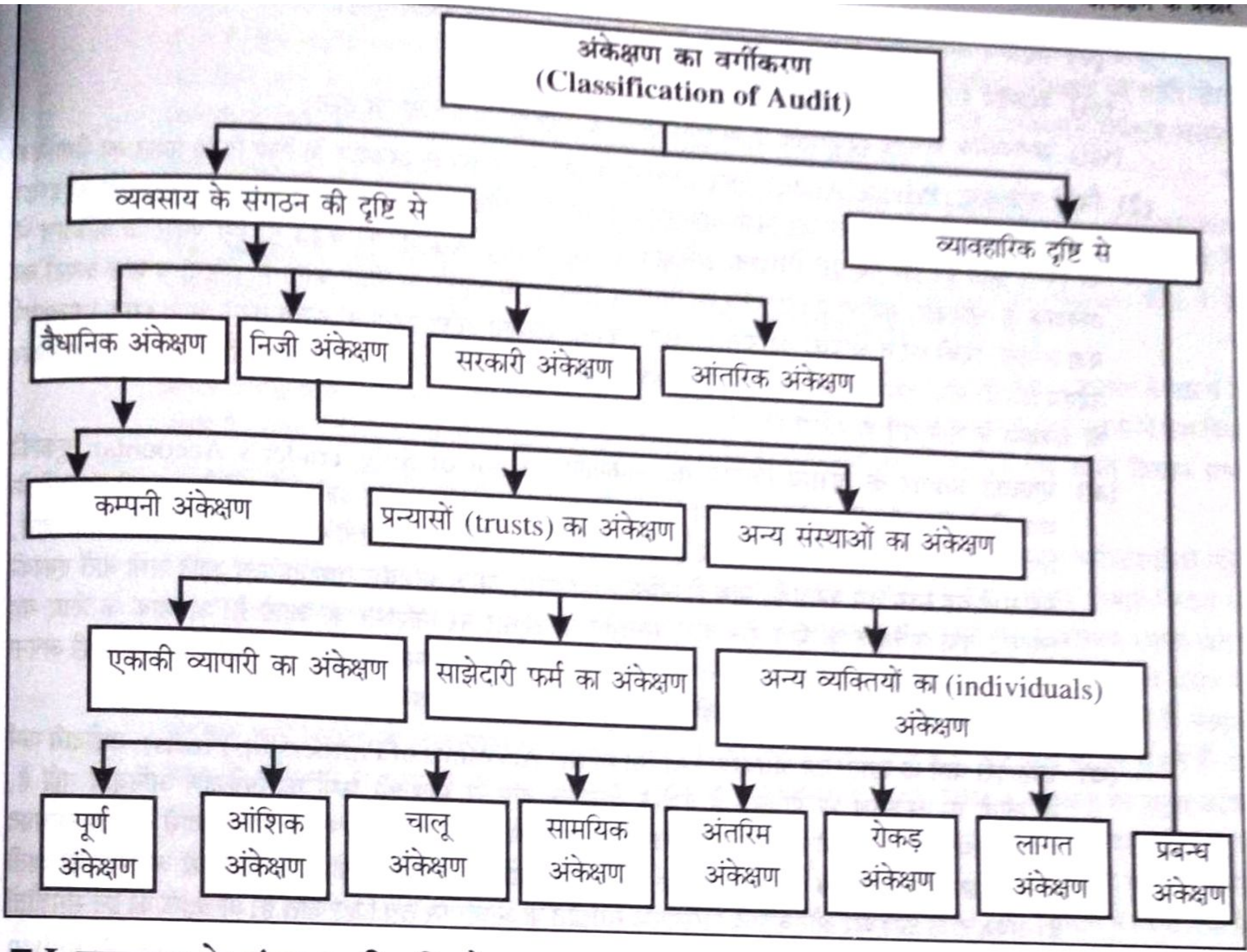

■ I. व्यवसाय के संगठन की दृष्टि से (According to the Organisation of Business)

व्यवसाय संगठन की दृष्टि से अंकेक्षण को निम्न चार भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं:

(1) वैधानिक अंकेक्षण (Statutory Audit): कुछ संख्याएं विशिष्ट अधिनियमों के अंतर्गत स्थापित होती हैं और ये संस्थाएं इन्हीं अधिनियमों के अनुसार अपना कार्य चलाती हैं। ऐसी भिन्न-भिन्न अधिनियमों के आधार पर चलने वाली संस्थाओं के लिए विधान के अनुसार अंकेक्षण अनिवार्य होता है। अत: जिन संस्थाओं के हिसाब-किताब का अंकेक्षण अनिवार्यत: किसी विधान के अंतर्गत कराया जाता है उसे वैधानिक अंकेक्षण कहते हैं। इस प्रकार के अंकेक्षण में अंकेक्षक का कार्यक्षेत्र, अंकेक्षक की योग्यता व अयोग्यता, अंकेक्षक के अधिकार एवं कर्तव्य, अंकेक्षक का पारिश्रमिक तथा अन्य अंकेक्षण संबंधी नियम क्रमश: उन संबंधित अधिनियमों द्वारा आदेशित होते हैं जिनके द्वारा ये संस्थाएं नियंत्रित होती हैं।

वैधानिक अंकेक्षण के संबंध में निश्चित विधान को समझौते द्वारा बदला नहीं जा सकता तथा अंकेक्षक के कर्तव्यों एवं दायित्वों को कम नहीं किया जा सकता यद्यपि आपसे समझौते द्वारा इन्हें बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि यह अंकेक्षण नियोक्ता की इच्छा पर निर्भर नहीं होता बल्कि अनिवार्य होता है। अत: इसे **अनिवार्य अंकेक्षण** (Compulsory Audit) भी कहते हैं। निम्नलिखित संस्थाओं के लिए अंकेक्षण एक वैधानिक अनिवार्यता है:

(i) कम्पनी अधिनियम, 2013 या पूर्व में किसी अधिनियम के अंतर्गत रजिस्टर्ड संयुक्त पूँजी कम्पनियां।

(ii) बैंकिंग कम्पनी अधिनियम, 1949 द्वारा नियन्त्रित बैंकिंग कम्पनियां।

(iii) बीमा अधिनियम, 1938 द्वारा नियन्त्रित बीमा कम्पनियां।

(iv) विभिन्न राज्यों के सहकारी समिति कानूनों के अंतर्गत रजिस्टर्ड सहकारी समितियां।

(v) विभिन्न धर्म-संबंधी कानूनों के अंतर्गत रजिस्टर्ड सार्वजनिक एवं धर्मार्थ ट्रस्ट।

(vi) स्थानीय सरकारें तथा सरकारी संस्थायें।

(vii) सार्वजनिक प्रन्यास अधिनियम के अंतर्गत रजिस्टर्ड सार्वजनिक प्रन्यास या ट्रस्ट।

(2) **निजी अंकेक्षण** (Private Audit): जिन संस्थाओं के हिसाब-किताब के अंकेक्षण के लिए किसी प्रकार का वैधानिक बन्धन नहीं होता है, उनका अंकेक्षण निजी अंकेक्षण कहलाता है। अंकेक्षण कराना अथवा न कराना इन संस्थाओं की इच्छा पर निर्भर होता है। इसलिए इसे **ऐच्छिक अंकेक्षण** (Voluntory Audit) भी कहते हैं। इस प्रकार के अंकेक्षण में अंकेक्षक के अधिकार, कर्तव्य एवं दायित्व का निर्धारण समझौते के आधार पर किया जाता है। त्रुटियों व छल-कपटों का पता लगाना, बिक्री कर व आयकर का उचित निर्धारण करना, सरकारी अधिकारियों को संतुष्ट करना आदि इसके महत्वपूर्ण उद्देश्य होते है। प्राय: इस अंकेक्षण की सीमा नियोक्ता से प्राप्त **हिदायतों** (Instructions) पर निर्भर करती है। इस प्रकार के अंकेक्षण के तीन वर्ग हो सकते है:

(अ) **एकाकी व्यापार के हिसाब-किताब का अंकेक्षण** (Audit of Sole Trader's Accounts): एकाकी व्यापारी के लिए वैधानिक तौर पर अपने हिसाब-किताब का अंकेक्षण कराना अनिवार्य नहीं है। एकाकी व्यापारी के हिसाब-किताब का अंकेक्षण स्वयं उसकी इच्छा पर निर्भर होता है। कितने खातों का और कब अंकेक्षण किया जाय यह सभी वह स्वयं तय करता है। साथ ही अंकेक्षक का कार्य, उसके अधिकार तथा दायित्व आदि सभी बातें एकाकी व्यापारी तथा अंकेक्षक के बीच होने वाले समझौते के आधार पर निश्चित की जाती है। अंकेक्षक के लिए यह आवश्यक है कि यह शर्तें प्रारम्भ में ही तय कर ले और लिखित रूप में सभी आदेश प्राप्त करने के पश्चात् ही अपना कार्य प्रारम्भ करे अन्यथा किसी गडबडी के समय उसे जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

(ब) **साझेदेरी फर्म के खातों का अंकेक्षण** (Audit of the Accounts of Partnership Firms): साझेदारी फर्म के खातों का अंकेक्षण भी ऐच्छिक है क्योंकि वैधानिक दृष्टि से साझेदारी फर्मों का अंकेक्षण अनिवार्य नहीं है सामान्यतया सभी साझेदारी संस्थाए अपने खातों का अंकेक्षण कराती हैं क्योंकि यह सभी साझेदारों के लिए लाभप्रद होता है। **साझेदारी संलेख** (Partnership Deed) में साझेदारी फर्म के खातों के अंकेक्षण की व्यवस्था की जाती है। अंकेक्षक के अधिकार और कर्तव्य पारस्परिक समझौते के आधार पर तय किए जाते हैं। अंकेक्षक को इन समझौते का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। यदि कोई समझौता न हो, तो भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 (Indian Partnership Act, 1932) की धाराओं का अध्ययन करना चाहिए। हिसाब-किताब संबंधी आपसी झगडों को न करने के लिए साझेदारी फर्म अपने हिसाब-किताब का अंकेक्षण कराती है।

(स) **अन्य व्यक्तियों तथा संस्थाओं का अंकेक्षण** (Audit of other Individuals and Institutions): ऐसे व्यक्तियों के हिसाब-किताब का अंकेक्षण भी आवश्यक हो जाता है जिनकी आय और व्यय दोनों पर्याप्त होते हैं इन व्यक्तियों के खातों का अंकेक्षण होने से हिसाब-किताब रखने वाले कर्मचारियों के चरित्र का पता चल सकता है और साथ ही आय-कर, व्यय-कर आदि के लिए भी अंकेक्षित हिसाब-किताब से सहायता मिलती है। जो व्यक्ति अपने एजेण्टों के सहारे अपना कार्य करते हैं उनके लिए भी अंकेक्षण लाभदायक होता है। **किराया वसूल करने वाले** (Rent Collectors) एवं **संपत्तियों के प्रबन्धक** (Estate Managers) इनके उदाहरण हैं। कुछ संस्थाए जैसे-**क्लब्स** (Clubs), जन-कल्याण समितियां आदि भी अपने खातों का अंकेक्षण कराती हैं।

(3) **सरकारी अंकेक्षण** (Government Audit): सरकारी विभागों (कार्यालयों) व संस्थाओं की जाँच को सरकारी अंकेक्षण कहते है। सभी सरकारी विभागों में हिसाब-किताब का अंकेक्षण करने के लिए सरकार एक **हिसाब-किताब और अंकेक्षण विभाग** (Accounts and Audit Department) रखती है। इस विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी **कम्पट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल** (Comptroller & Auditor General) होता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 148 के अंतर्गत भारत का राष्ट्रपति कम्पट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल की नियुक्ति करता है। संविधान के अनुच्छेद 14[illegible] के अनुसार ऑडिटर जनरल को केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा अन्य किसी सरकारी संस्था के हिसाब-किताब के सबन्ध में उन अधिकारों एवं कर्तव्यों का पालन करना होता है जो कि भारतीय संसद द्वारा अथवा उसके द्वारा बनाए गए किसी अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित किए गए है। कम्पट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल के अधीन कई इकाइयाँ होती है जो सरकार

के विभिन्न विभागों का अंकेक्षण करती है। इन इकाइयों में अनेक छोटे-बड़े कर्मचारी होते हैं जो अंकेक्षक के रूप में कार्य करते हैं। यहां यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि ये सरकारी अंकेक्षक सार्वजनिक अंकेक्षकों की भांति योग्य नहीं होते। अत: ये किसी अन्य सार्वजनिक संस्था के अंकेक्षक नहीं हो सकते। ये कर्मचारी (अंकेक्षक) पूर्णतया सरकारी विभागों के लिए ही होते है और विभागीय नियमों के आधार पर कार्य करते हैं।

प्रत्येक राज्य में भी अलग से कम्पट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल के अधीन एक **महालेखापाल** (Accountant General) का कार्यालय खोला गया है जो राज्य सरकार के विभागों के हिसाब-किताब के लेखों की जांच करता है। राज्य सरकारों में **एक स्थानीय कोष अंकेक्षण विभाग** (Local Fund Audit Department) होता है जो नगरपालिकाओं, पंचायत समितियों, ग्राम पंचायतों आदि के हिसाब-किताब की जांच करता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 151 के अनुसार भारत का कम्पट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल केंद्रीय सरकार के खातों के बारे में अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट राष्ट्रपति को देता है तथा इस रिपोर्ट को **संसद** (Parliament) के दोनों सदनों में पेश किया जाता है। राज्य सरकार के खातों से संबंधित रिपोर्ट उस राज्य के राज्यपाल को की जाती है तथा **राज्य विधान सभा** (Assembly) में पेश की जाती है।

(4) **आंतरिक अंकेक्षण** (Internal Audit): कुछ संस्थाओं का संगठन इस प्रकार होता है कि वे अन्य कर्मचारियों की भाँति अपने यहाँ अंकेक्षकों को भी नियुक्त करती हैं। इसका कारण प्राय: यह होता है कि ऐसी संस्थाए हिसाब-किताब की गड़बड़ी तथा छल-कपट को रोकने के लिए अंकेक्षक कर्मचारियों की आवश्यकता समझती हैं। ये अंकेक्षक स्थायी होते हैं और अन्य कर्मचारियों की भाँति इनको वेतन मिलता है। इस प्रकार एक संस्था के हिसाब-किताब की समय-समय पर अंकेक्षक के रूप में नियुक्त उसके वेतन प्राप्त कर्मचारियों द्वारा की गई जाच आतरिक अंकेक्षण कहलाती है। मामूली योग्यता वाले व्यक्ति जो **लेखापाल** (Accountant) का कार्य करने के योग्य होते हैं, इस कार्य को कर सकते हैं। इस प्रकार के अंकेक्षकों के पास **सी. ए.** (C.A.) की डिग्री होना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार के अंकेक्षक का प्रमुख उद्देश्य लेखों की जाच कर उनमें पाई जाने वाली असत्यता व अनियमितता को दूर करना तथा आंतरिक निरीक्षण की प्रथा को प्रभावशाली बनाना है। आंतरिक अंकेक्षक अपने नियोक्ता को बाह्य अंकेक्षक की भांति रिपोर्ट नहीं देता है परतु वह लेखों के सुधार के विषय में समय-समय पर सुझाव देता है। आंतरिक अंकेक्षण का विस्तृत वर्णन आगे अध्याय में किया गया है।

II. व्यावहारिक दृष्टि से (According to Practical Way)

व्यवहार में अंकेक्षण के निम्न रूप देखने को मिलते हैं:

(1) **पूर्ण अंकेक्षण** (Complete Audit): जब किसी संस्था के एक निश्चित अवधि से संबधित समस्त लेखा-पुस्तकों की विधिपूर्वक जांच की जाए जिससे कोई भी **सौदा** (Transaction) या खाते अथवा अन्य सबधित लेखे जाच से न छूटने पायें तो इसे पूर्ण अंकेक्षण कहते हैं। इसमें प्रत्येक लेन-देन, प्रविष्टि, पुस्तक, जोड़, शेष, **प्रमाणक** (Voucher), संलेख पत्र तथा प्रपत्र की जांच की जाती है। वैधानिक तौर से कम्पनी में यह अंकेक्षण अनिवार्य है।

(2) **आंशिक अंकेक्षण** (Partial Audit): जब किसी संस्था के पूरे हिसाब-किताब की जाच न करके केवल उसके किसी विशेष भाग की जांच अथवा किसी विशेष अवधि के खातों की जाच की जाती है तो ऐसे अंकेक्षण को आंशिक अंकेक्षण कहते हैं जैसे केवल क्रयबही अथवा विक्रयबही अथवा रोकड़बही की जांच कराना या केवल नवम्बर, दिसम्बर तथा जनवरी के लेखों की जांच कराना। आंशिक अंकेक्षण व्यावहारिक नहीं है। न तो कोई नियोक्ता ऐसा अंकेक्षण करवाना चाहेगा और न अंकेक्षक ही ऐसे कार्य के लिए तैयार होगा। परतु कई बार किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए आंशिक अंकेक्षण करा लिया जाता है। यदि अंकेक्षक से आशिक जांच (अंकेक्षण) करायी जाये, तो उसे अपनी रिपोर्ट देते समय यह स्पष्ट रूप से लिख देना चाहिए कि यह रिपोर्ट आशिक जाच की है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो जो भी व्यक्ति इस रिपोर्ट के आधार पर कार्य करने में हानि उठायेगा, अंकेक्षक उसके प्रति उत्तरदायी होगा।

(3) **चालू अंकेक्षण** (Continuous Audit)
अंकेक्षक द्वारा वर्ष-भर निश्चित या अनिश्चित अंतराल (Interval) पर आकर हिसाब-किताब की विस्तृत जांच करने को

चालू अंकेक्षण कहते है। इस प्रकार चालू अंकेक्षण में, अंकेक्षक निश्चित अथवा अनिश्चित समय के अंतर से पूरे ... बही-खातों की जांच-पड़ताल करने में व्यस्त रहता है। इस अंकेक्षण को विस्तृत अंकेक्षण (Detailed Audit) ... निरंतर अंकेक्षण (Running Audit) भी कहते है।

चालू अंकेक्षण की कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्न है:

आर. जी. विलियम्स के अनुसार, **"चालू अंकेक्षण से आशय ऐसे अंकेक्षण से है जिसके अन्दर अंकेक्षक ... उसका स्टाफ वर्ष भर हिसाब-किताब की जांच करता रहता है या निश्चित अथवा किसी अनिश्चित समय ... बाद व्यापार काल के मध्य हिसाब-किताब का निरीक्षण करता है।"** (A continuous audit is one where the auditor or his staff is constantly engaged in checking the accounts during the whole period or where the auditor or his staff attends at regular intervals during the period **R.G. Williams**)

स्पाईसर एवं पेगलर के अनुसार, **"इसमें अंकेक्षक के कर्मचारी वर्ष भर निरंतर रूप से खातों की जांच करने ... या अंकेक्षण पूरे वर्ष भर ही थोड़े-थोड़े समय के अंतर से व्यापार के बही खातों की जांच पड़ताल करके अंकेक्षक का अपना कार्य पूरा करता है।"** (A continuous audit is one where the auditor's staff is occupied continuously on the accounts the whole year round, or where the auditor attends at intervals fixed or otherwise during the currency of the financial year, and performs an interim audit. **-Spicer and Pegler**)

डब्ल्यू. डब्ल्यू. बिग के अनुसार, "चालू अंकेक्षण वह है जिसमें अंकेक्षक का स्टॉफ वर्ष भर खातों की जांच में लगातार लगा रहता है।" (A continuous audit is one where the auditors staff is constantly engaged in checking the accounts during the whole year round. - **W.W. Bigg**)

उपरोक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि चालू अंकेक्षण वास्तव में वह है जो वित्तीय वर्ष के प्रारंभ से शुरू होता है और वर्ष के अंत तक चलता रहता है। अंकेक्षक का आना उसकी सुविधा और काम की आवश्यकता पर निर्भर करता है। इसका दूसरा रूप यह भी है कि वित्तीय वर्ष में निश्चित समान्तर (Fixed Intervals) जैसे- साप्ताहिक, अर्द्ध-मासिक या मासिक पर आकर अंकेक्षक का स्टाफ अंकेक्षण करता रहता है परंतु वह अपनी रिपोर्ट वर्ष के अंत में ही देता है। अतः लेखाकर्म के साथ ही साथ अंकेक्षण होना ही चालू अंकेक्षण का मूल सिद्धान्त है।

(3.1) उपयुक्तता (Suitability)

यद्यपि चालू अंकेक्षण कानून द्वारा अनिवार्य नही है परंतु फिर भी निम्नलिखित दशाओं में इसका प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता है

(i) **जहां व्यवसाय का आकार बड़ा हो** (Where the Size of the Buisness is Large): ऐसे व्यापार जिनका आकार बड़ा है अर्थात् जो बड़े पैमाने पर उत्पादन, क्रय-विक्रय इत्यादि करते हैं, इनमें व्यापारिक लेन-देन अधिक होने के कारण लेखाकर्म की क्रियाएं भी अधिक होती हैं। अत: ऐसी संस्थाओं में चालू अंकेक्षण उपयोगी सिद्ध होता है

(ii) **जहां अंतिम खातों की शीघ्र आवश्यकता हो** (Where Final Accounts are early Needed): कई उद्योग एवं व्यवसाय ऐसे होते है जिनमें लाभ-हानि खाते एवं चिट्ठे की वर्ष के समाप्त होने के तत्काल बाद ही पेश करने की आवश्यकता पड़ती है, जैसे- बैंक, बिजली कम्पनी, गैस कम्पनी, रेलवे कम्पनी, खानों से सम्बन्धित कम्पनियां आदि। यदि इनमे चालू अंकेक्षण अपनाया जाता है तो वित्तीय वर्ष की समाप्ति के साथ ही अंकेक्षण का अधिकांश भाग पूरा हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप अंतिम खाते बनाकर अंकेक्षक से शीघ्र रिपोर्ट प्राप्त की जा सकती है।

(iii) **जहां आंतरिक निरीक्षण प्रणाली संतोषजनक न हो** (Where Internal Checking System is not Satisfactory): ऐसे व्यवसाय जिनमें आंतरिक निरीक्षण प्रणाली का होना बहुत आवश्यक हो किन्तु उस व्यवसाय

में आंतरिक निरीक्षण प्रणाली न हो और यदि हो भी, तो संतोषजनक न हो तथा जिसके आधार पर परीक्षण जांच (Test Checking) पर विश्वास न किया जा सकता हो, वहां चालू अंकेक्षण अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

(iv) जहां गहन जांच जरूरी हो (Where Intensive Checking is Necessary): ऐसे व्यवसाय जिनके खातों में पिछले वर्षों में अनियमितताएं एवं गबन अधिक रहे हैं उनके लिए चालू अंकेक्षण अधिक उपयुक्त एवं प्रभावशाली हैं क्योंकि उनमें खातों की गहन जांच की अधिक आवश्यकता होती है।

(v) जहाँ अंतरिम खाते बनाए जाते हों (Where Interim Accounts are Prepared): ऐसे व्यवसायों में जहां बिक्री, क्रय तथा व्ययों के विवरण (खातों के विवरण) प्रबन्धकों के सम्मुख मासिक, त्रैमासिक या अन्य इसी प्रकार की अवधि के पश्चात् प्रस्तुत करने होते हैं तथा लाभ-हानि खाते एवं चिट्ठे तिमाही या अर्द्धवार्षिक तैयार किए जाते हैं; चालू अंकेक्षण उपयुक्त होता है।

(3.2) चालू अंकेक्षण के लाभ (Advantages of Continuous Audit)

(i) विस्तृत एवं गहन जांच संभव (Detailed and Intensive Checking Possible): इस पद्धति में अंकेक्षण कार्य वर्ष भर-चलता रहता है। अत: हिसाब-किताब की विस्तृत एवं गहन जांच हो जाती है।

(ii) त्रुटियों एवं छल-कपट का शीघ्र प्रकट होना (Early Detection of Errors and Fraud): अंकेक्षक द्वारा विस्तृत एवं गहन जांच के फलस्वरूप गलतियों तथा छल-कपटों का सरलता तथा शीघ्रता से पता चल जाता है। यदि अंकेक्षण वर्ष के अंत में केवल एक बार किया जाए तो गड़बड़ी करने वाले कर्मचारियों को छल-कपट के लिए अधिक अवसर मिल जाता है।

(iii) व्यापारिक कार्य-प्रणाली का ज्ञान (Knowledge of Working Procedure of Business): पूरे वर्ष कार्य करने से अंकेक्षक संस्था की व्यापारिक कार्य-प्रणाली से पूर्ण रूप से परिचित हो जाता है तथा उसे उस संस्था की कमजोरियों एवं गोपनीय तथ्यों की भी जानकारी हो जाती है। यह अंकेक्षण कार्य में उपयोगी सिद्ध होती है।

(iv) कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव ((Moral Effect on Employees): चालू अंकेक्षण में अंकेक्षक समय-समय पर आकर लेखों की जाँच करता है इससे कर्मचारियों को हर समय इस बात का भय बना रहता है कि पता नहीं कब अंकेक्षक जांच हेतु उपस्थित हो जाए। अत: कर्मचारी अपना कार्य पूर्णत: ठीक (Up-to-date) रखते हैं तथा नियमित रूप से कार्य करते हैं। इससे उनकी कार्यक्षमता, ईमानदारी एवं सतर्कता में वृद्धि होती है।

(v) अंतिम खातों का शीघ्र प्रस्तुतीकरण (Early Presentation of Final Accounts): चालू अंकेक्षण में क्योंकि अंकेक्षण कार्य एवं लेखाकर्म साथ-साथ चलते हैं, इससे कार्य इकट्ठा नहीं हो पाता। अत: अंकेक्षित अंतिम खाते वित्तीय वर्ष के समाप्त होते ही तत्काल प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(vi) अंकेक्षण कार्य में सुविधा (Convenience in Audit Work): चालू अंकेक्षण में अंकेक्षक को अपने कार्य में पर्याप्त सुविधा मिलती है। अंकेक्षक अपने संपूर्ण कार्य को भली प्रकार आयोजित कर सकता है तथा उसे उचित रूप से अपने कर्मचारियों में बांट सकता है। इस प्रकार वित्तीय वर्ष के अंत में अपने ऊपर आने वाले कार्य के अनुचित भार को वह दूर कर सकता है।

(vii) अंतरिम खाते की शीघ्र तैयारी (Early Preparation of Interim Accounts): जब कम्पनी के संचालक अंतरिम लाभांश घोषित करना चाहते हैं तो अंतरिम खाते बनाने पड़ते हैं। चालू अंकेक्षण होने से अंतरिम खाते शीघ्र तैयार करने में सहायता मिलती है।

(viii) अंकेक्षक द्वारा उपयोगी सलाह (Valuable Suggestions by Auditor): अंकेक्षक विस्तृत जांच करने तथा व्यवसाय से पूरे वर्ष संबंध रखने के कारण उसकी तकनीकी बातों एवं लेखों की कमजोरियों से परिचित हो जाता है और वह इस स्थिति में हो जाता है कि वह नियोक्ता को उपयुक्त सलाह दे सकें।

(ix) लेखाकर्म प्रणाली में सुधार (Improvement in Accounting Procedure): अंकेक्षक द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर आंतरिक निरीक्षण की कमियों को दूर किया जा सकता है तथा लेखा-पुस्तकों को रखने में यदि कोई कमी है तो उसे सुधारा जा सकता है।

(3.3) चालू अंकेक्षण की हानियाँ (Disadvantages of Continuous Audit)

चालू अंकेक्षण के उपर्युक्त लाभों के होते हुए भी इसकी कुछ सीमाएं है जो निम्नलिखित हैं:

(i) **अंकों में परिवर्तन** (Alteration in Figures): चालू अंकेक्षण में अंकेक्षण के बाद भी पुस्तकें खुली रहती अत: उनके अंकों में परिवर्तन किया जा सकता है। इसके अन्दर कर्मचारियों को यह पता होता है कि जिन पुस्तकों अंकेक्षक ने जांच लिया है उनकी दोबारा जांच नहीं होगी इसलिए बेइमान व चालाक लेखापाल उनके अंकों परिवर्तन करके गड़बड़ी कर सकते हैं।

(ii) **कार्य का तांता टूटना** (Break in Continuity of Work): अंकेक्षक वर्ष के बीच कई बार आता है और ... करता है। इस प्रकार बीच-बीच में आने से कार्य का तांता (Thread of Work) टूट जाता है तथा किसी कार्य जांच अधूरी रह सकती है।

(iii) **कार्य में बाधा** (Interruption in Work): अंकेक्षक के वर्ष के बीच में बार-बार आने से कार्यालय का दैनिक ... (Routine) बिगड़ जाता है जिससे कर्मचारियों के कार्य में बाधा पड़ती है और कार्य की प्रगति रुकती है क्यों कर्मचारी अंकेक्षक द्वारा पूछे जाने वाले स्पष्टीकरणों का उत्तर देते हैं।

(iv) **अधिक खर्चीली** (More Expensive): अंकेक्षण की यह पद्धति केवल बड़ी संस्थाओं के लिए ही उपयुक्त हितकर है। छोटी-छोटी संस्थाओं के लिए यह उपयोगी नहीं है। अंकेक्षक के स्टाफ द्वारा वर्ष-पर्यन्त कार्य करने से ... अधिक पारिश्रमिक का भुगतान करना पड़ता है।

(v) **कार्य का यंत्रवत् होना** (Mechanisation of Work): चालू अंकेक्षण में कार्य यंत्रवत् हो जाता है और अंकेक्षक का स्टाफ इसमें कम रुचि लेता है जिससे कार्य की किस्म घट जाती है। साथ ही स्टाफ को यह भी पता रहता है कि वर्ष की समाप्ति में काफी समय है अत: वे कार्य धीरे-धीरे व लापरवाही से करते हैं जिससे कार्य शिथिल हो जाता है।

(vi) **नियोक्ता के कर्मचारियों की निर्भरता** (Dependence of Employer's Staff): कार्य के दौरान कई ... नियोक्ता के कर्मचारी कुछ गलतियों को नहीं ढूंढ पाते। वे इस संबंध में अंकेक्षक के स्टॉफ की सहायता पर निर्भर करते हैं। इससे अंकेक्षक के स्टॉफ को जांच में अधिक समय देना पड़ता है।

(vii) **नैतिक प्रभाव में कमी** (Less Moral Effect): अंकेक्षक का स्टाफ बार-बार संस्था के कर्मचारियों के सम्पर्क में आता है। फलस्वरूप उनकी जान-पहचान बढ़ती है और उनमें मित्रतापूर्ण संबंध बन जाते हैं जिसके कारण संस्था के कर्मचारियों पर नैतिक प्रभाव की कमी आ जाती है और वे सांठ-गांठ कर कपट इत्यादि कर सकते हैं।

(viii) **विस्तृत नोट तैयार करना** (Preparation of Detailed Note): अंकेक्षण के पश्चात् आँकड़ों में किसी ... परिवर्तन की संभावना को रोकने के लिए अंकेक्षक-स्टॉफ को अपनी नोट-बुक में कुछ चीजें विस्तार से लिखनी पड़ती हैं।

(3.4) सावधानियां (Precautions)

उपर्युक्त हानियाँ तथा सीमाएं वास्तविक न होकर सैद्धांतिक हैं। इन्हें निम्नलिखित सावधानियों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है:

(i) **कर्मचारियों को निर्देश** (Instructions to Employees): नियोक्ता की ओर से कर्मचारियों को इस बात की चेतावनी होनी चाहिए कि वे अंकेक्षण के बाद अंकों में परिवर्तन न करें। यदि कोई परिवर्तन किया भी जाए तो ... नवीन जर्नल प्रविष्टि द्वारा होना चाहिए न कि अंकों को काटकर ठीक किया जाए।

(ii) **गुप्त चिन्हों का प्रयोग** (Use of Secret Tick Mark): चेतावनी के बावजूद भी अंकों में परिवर्तन हो जाते हैं इसलिए अंकेक्षकों को गुप्त चिन्हों का प्रयोग करना चाहिए। इन चिन्हों का पता कर्मचारियों को नहीं होना चाहिए। ... अंकेक्षण के पश्चात् अंकेक्षक को स्वयं कोई अंक परिवर्तन करना पड़े तो वह रंगीन पेंसिल अथवा किसी दूसरी स्याही से सही संख्या लिख सकता है।

(iii) टिप्पणी-पुस्तक का प्रयोग (Use of Note-Book): असंतोषजनक तथा अस्पष्ट बातें, मुख्य-मुख्य जोड़, बाकियां तथा सुधारी गई त्रुटियों का विवरण टिप्पणी-पुस्तक में नोट कर लेना चाहिए। यह भविष्य में काम आ सकता है।

(iv) अव्यक्तिगत खातों की जांच अंत में (Checking of Impersonal Accounts in The End) अव्यक्तिगत खातों की जांच अंतिम अंकेक्षण के समय करनी चाहिए क्योंकि उनमें गबन होने की संभावना अधिक होती है। इन खातों में झूठी प्रविष्टियां की जाने की अधिक संभावना रहती है।

(v) व्यवस्थित कार्यक्रम (Systematic Programme): अंकेक्षक को एक व्यवस्थित कार्यक्रम बनाकर कार्य करना चाहिए तथा लेखांकन के कार्यों की जांच की दृष्टि से कई भागों में बांट देना चाहिए और एक बैठक में एक भाग का कार्य पूरा कर देना चाहिए जिससे कार्य का क्रम न टूट पाए। ऐसा करने से लेखे जांच से नहीं छूट पाते हैं।

(vi) प्रगति सारणी बनाना (Preparation of Progress Table): लेखांकन के कार्यों की जांच अंकेक्षक को हमेशा अंकेक्षण कार्यक्रम के अनुसार करनी चाहिए तथा एक अंकेक्षण प्रगति सारणी पुस्तक बना लेनी चाहिए जिसमें अंकेक्षण कार्य में होने वाली प्रगति को लिखना चाहिए जिससे यह मालूम हो जाये कि कार्य कहां तक समाप्त हो गया है।

(vii) अंकेक्षण स्टाफ में परिवर्तन (Change in Audit Staff): समय-समय पर अंकेक्षण स्टाफ के सदस्यों को बदलते रहना चाहिए जिससे कि उनकी मित्रता संस्था के कर्मचारियों से न हो सके और वे किसी प्रकार की सांठगांठ न कर सकें।

(4) सामयिक अंकेक्षण (Periodical Audit)

अंकेक्षक द्वारा वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर जब अंतिम खाते पूर्ण रूप से तैयार हो जाते हैं, नियोक्ता के स्थान पर आकर एक ही बार में उसके खातों की जांच पूरी कर देने को सामयिक अंकेक्षण कहते हैं। इस प्रकार यह अंकेक्षण वर्ष में केवल एक ही बार होता है। क्योंकि यह अंकेक्षण वर्ष के अंत में होता है इसलिए इसे वार्षिक अंकेक्षण (Annual Audit) या **अंतिम अंकेक्षण** (Final Audit) भी कहते हैं। इस अंकेक्षण का एक और नाम **चिट्ठा अंकेक्षण** (Balance Sheet Audit) भी है क्योंकि इसे चिट्ठा बन जाने के बाद प्रारम्भ किया जाता है। किन्तु अमेरिका में चिट्ठा अंकेक्षण का अर्थ केवल चिट्ठे के अंकेक्षण से ही लिया जाता है।

(A) **डी. पौला** के अनुसार, **''सामयिक अंकेक्षण वह है जिसमें अंकेक्षक लेखों की अवधि की समाप्ति तक कार्य को प्रारम्भ नहीं करता है तथा बाद में संपूर्ण जांच को एक ही बार में निपटा देता है।''** (A periodical audit is one where the auditor does not attend until the end of the period of the accounts when the whole of the checking is effected at one time. - **De. Paula**)

(B) **डिक्सी** के अनुसार, **''सामयिक अंकेक्षण वह है जो कि उस वित्तीय अवधि की समाप्ति के बाद शुरू किया जाता है जिससे यह संबंधित होता है। इसमें चालू अंकेक्षण के लाभ नहीं पाए जाते हैं।''**

उपरोक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामयिक अंकेक्षण में अंकेक्षक केवल एक बार ही नियोक्ता के काम के स्थान पर जाता है और तब तक खातों की जांच करता रहता है जब तक कि पूरी अवधि का कार्य समाप्त नहीं हो जाता।

(4.1) उपयुक्तता (Suitability)

सामयिक अंकेक्षण निम्नलिखित विशेषता वाले व्यवसायों के लिए उपयुक्त है:

(i) छोटा व्यवसाय (Small Business): यदि व्यवसायिक इकाई का आकार छोटा है एवं लेन-देन कम है तो वर्ष के अंत में एक बार ही अंकेक्षण कराना उपयुक्त होगा।

अंकेक्षण प्रक्रिया एवं अंकेक्षण कार्यक्रम

(Audit Process and Audit Programme)

■ 1. अंकेक्षण प्रारंभ करने से पूर्व तैयारी (Preparation before Audit)

वर्तमान युग में किसी भी कार्य को प्रारंभ करने से पूर्व उसके संबंध में तैयारी करना अर्थात् योजना बनाना आवश्यक है। बिना तैयारी के किए गए कार्य में आशानुकूल सफलता मिलने में सन्देह रहता है। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति को अपने परिवार के साथ कश्मीर घूमने जाना है तो उसके दिमाग में कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं कब जाना है? कैसे जाना है? कितने दिन ठहरना है? कहाँ ठहरना है? जाने का साधन क्या होगा? इत्यादि। इन सभी के लिए वह योजना बनाता है एवं तैयारी करता है तथा उसी आधार पर कार्य करता है तभी सफलता मिलती है। इस प्रकार एक अंकेक्षक को भी अपना अंकेक्षण-कार्य प्रारंभ करने से पूर्व कुछ तैयारी अवश्य करनी चाहिए। वह क्या करे, यह उन परिस्थितियों पर निर्भर होगा जिनमें उसे कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है। अंकेक्षण कार्य प्रारंभ से पूर्व अंकेक्षक को कुछ प्रारंभिक बातों की जानकारी करनी होती है। यदि अंकेक्षक पिछले कई वर्षों से उस संस्था का अंकेक्षण-कार्य करता चला आ रहा है तो उसे पहले ही बहुत-सी बातों की जानकारी होती है। कभी-कभी कुछ विशेष जानकारियों के लिए अंकेक्षक उस संस्था संबंधी अंकेक्षण-पत्रों की फाइल निकाल कर अध्ययन कर लेगा तथा इसी आधार पर अंकेक्षण कार्य की तैयारी कर लेगा अर्थात् योजना बना लेगा किन्तु जब कभी कोई अंकेक्षक किसी संस्था का प्रथम बार अंकेक्षण प्रारंभ करने वाला है तो उसे बहुत-सी जानकारियां प्राप्त करनी होती हैं।

अतः एक अंकेक्षक को एक नया अंकेक्षण प्रारंभ करने से पूर्व निम्न बातों से संबंधित जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए:

(1) कार्य का क्षेत्र एवं उसकी प्रकृति (Scope and Nature of the Work Assigned): अंकेक्षण प्रारंभ करने से पूर्व अंकेक्षक को अपना कार्य क्षेत्र निर्धारित करना चाहिए कि उसे कितना काम करना है अर्थात् उसे लेखा पुस्तकों के किसी एक भाग का अंकेक्षण करना है अथवा सम्पूर्ण लेखों का अंकेक्षण करना है। कार्य की सीमा अंकेक्षक तथा उसके नियोक्ता के बीच हुए समझौते अथवा उसके **नियुक्ति पत्र** (Appointment Letter) की शर्तों पर निर्भर होगी। परन्तु यदि वैधानिक अंकेक्षण है तो अंकेक्षक का कार्यक्षेत्र विधान द्वारा निश्चित होता है और नियोक्ता व अंकेक्षक द्वारा उसे केवल बढ़ाया ही जा सकता है लेकिन कम नहीं किया जा सकता। अंकेक्षक को यदि तलपट मिलाने, लाभ-हानि खाता तैयार करने आदि का कार्य भी सौंपा जाता है तो वह इस कार्य को अंकेक्षक के रूप में न करके **लेखापाल** (Accountant) की हैसियत से करता है जिसके लिए वह अतिरिक्त पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकारी है।

(2) अंकेक्षण का उद्देश्य (Objects of Auditing): अंकेक्षण करने से पूर्व अंकेक्षक को इस बात का भी पता लगाना चाहिए कि नियोक्ता का अंकेक्षण कराने का क्या उद्देश्य है? इस प्रकार की जानकारी उस समय आवश्यक है जब अंकेक्षण प्रथम बार कराया जाए। यदि हर वर्ष ही अंकेक्षण कराया जाता है तो फिर इस प्रकार का उद्देश्य जानने की विशेष आवश्यकता नहीं होती।

(3) व्यवसाय की प्रकृति एवं तान्त्रिक विशेषताएं (Nature and Technical Features of Business): अंकेक्षण करने से पूर्व अंकेक्षक को नियोक्ता के व्यवसाय की प्रकृति एवं व्यवसाय की अन्य तकनीकी बातों की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये जैसे किस वस्तु का व्यापार होता है? कहां से वस्तु का क्रय-विक्रय होता है? व्यवसाय की सम्पत्तियों का क्या

स्वभाव है, व्यवसाय के आय-व्यय के क्या मद है, विनियोग की क्या नीतियां हैं आदि। एक जैसा व्यापार करने वाली संस्थाओं का कार्य भी पूर्णतः समान नहीं होता। अतः अंकेक्षक को उन सभी विशेष बातों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जो एक संस्था से संबंधित हों। ये विशेष बातें क्या और कितनी हो सकती हैं? यह संस्था के स्वभाव पर निर्भर होगा।

(4) **लेखा प्रणाली का ज्ञान** (Knowledge of Accounting System): व्यावसायिक इकाई में प्रयोग होने वाली लेखांकन प्रणाली का भी पर्याप्त ज्ञान करना चाहिए क्योंकि बीमा कम्पनी, बैंक, संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी, सिनेमाघर, बिजली कम्पनी, शिक्षा संस्था आदि सभी संस्थाएं भिन्न-भिन्न प्रकार से खाते बनाती हैं और विभिन्न पुस्तकों का प्रयोग करती है। लेखांकन की प्रत्येक प्रणाली के गुण व दोष भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः जो भी प्रणाली अपनाई जाएगी उसकी दुर्बलताओं को अंकेक्षक ध्यान में रख सकता है।

(5) **विभिन्न प्रपत्रों का अध्ययन** (Study of Various Documents): अंकेक्षक को जिस व्यवसाय का अंकेक्षण करना है उस व्यवसाय से संबंधित सन्नियम (Law) का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। साथ ही संस्था की नियमावली, जिसके अनुसार संस्था का कार्य चलता है, का अध्ययन करना चाहिए। उदाहरणस्वरूप कम्पनी के **पार्षद सीमानियम** (Memorandum of Association) तथा **पार्षद अंतर्नियम** (Articles of Association) और साझेदारी संस्था के लिए **साझेदारी संलेख** (Partnership Deed) आदि। इन आधारस्वरूप नियमों का अध्ययन करने से वह संस्था की कार्य-प्रणाली से पूर्ण परिचित हो सकता है। नियमों का गहन अध्ययन एवं उनका विशेष ज्ञान अंकेक्षक के लिए अत्यंत आवश्यक है।

(6) **लेखा पुस्तकों की सूची** (List of Books of Accounts): व्यावसायिक संस्था में कौन-कौन सी व्यापारिक पुस्तकें प्रयोग हो रही हैं इसकी एक सूची तथा जो व्यक्ति इन पुस्तकों को लिखने से संबंधित है उनके नाम की सूची अंकेक्षक को प्राप्त कर लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त वैधानिक तथा अन्य आवश्यक पुस्तकों की भी सूची प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(7) **आंतरिक निरीक्षण प्रणाली का अध्ययन** (Study of Internal Checking System): अंकेक्षक को अपना कार्य आरंभ करने से पूर्व आंतरिक निरीक्षण प्रणाली का पूर्ण अधययन करना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि आंतरिक निरीक्षण प्रणाली कैसी है? आंतरिक निरीक्षण वह व्यवस्था है जिसके आधार पर एक संस्था के कार्य का बंटवारा उसके कर्मचारियों के बीच इस प्रकार किया जाता है कि कार्य करने के साथ जांच भी होती जाए। यदि कार्य के बंटवारे में दोष है, तो संस्था के हिसाब-किताब में अशुद्धियां और छल-कपट होने की सम्भावना रहती है। अतः अंकेक्षण को यह देखना चाहिए कि आंतरिक निरीक्षण की पद्धति संतोषजनक है अथवा नहीं। यदि नहीं है तो उन कमियों को ध्यान में रखकर ही उसे अपनो कार्य पद्धति की सीमा तय करनी चाहिए।

(8) **गत वर्षों के अंतिम खातों का ज्ञान** (Knowledge of Previous Years' Final Account): यदि संस्था पिछले कई वर्षों से कार्य कर रही है तो अंकेक्षक को पिछले कुछ वर्षों के अंकेक्षित हिसाब-किताब के संबंध में दी गई रिपोर्ट, लाभ-हानि खाता, चिट्ठा तथा अन्य संबंधित विवरण-पत्रों की जांच करनी चाहिए और देखना चाहिए कि इनमें किसी विपरीत तथ्य पर प्रकाश तो नहीं डाला गया है। यदि पिछले अंकेक्षक ने अपनी रिपोर्ट में किन्हीं कमियों अथवा त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है तो उन पर अंकेक्षण के समय विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(9) **अंकेक्षण की अवधि** (Period of Audit): अंकेक्षक को इस बात का भी पता लगाना चाहिए कि अंकेक्षण कितनी अवधि के लेखों का कराया जाएगा। साधारणतः अंकेक्षण एक वर्ष की अवधि का कराया जाता है लेकिन कुछ परिस्थितियों में इससे कम व अधिक अवधि के लेखों का अंकेक्षण भी कराया जा सकता है।

(10) **नियोक्ता को निर्देश** (Instructions to Employer): उपरोक्त जानकारियां प्राप्त करने के पश्चात् अंकेक्षक को चाहिए कि वह अपने नियोक्ता को निम्न बातों के संबंध में निर्देश दे:

(i) पुस्तकों के जोड़ किए जाएं तथा तलपट व अंतिम खाते तैयार रखे जाएं।

(ii) सभी प्रमाणक (Vouchers) क्रमानुसार रखे जाएं।

(iii) देनदारों व लेनदारों की सूची तैयार की जाए।

(iv) अप्राप्त व संदिग्ध ऋणों की सूची बना ली जाए।

(v) अदत्त व्यय (Outstanding Expenses), पेशगी व्यय (Prepaid Expenses) एवं अर्जित आय (Accrued Income) की सूची तैयार की जाए।

(vi) स्टॉक की सूची बनाई जाए। इसका मूल्यांकन करने का ढंग भी बताया जाए।

(vii) विनियोगों की सूची बनाई जाए तथा इसमें उनका लागत मूल्य भी लिखा जाए।

(viii) विभिन्न शाखाओं, प्रतिनिधियों एवं अन्य संबंधित संस्थाओं के लेन-देन से संबंधित वापस माल की प्रमाणित सूचियां बनाई जाएं।

(ix) स्थायी पूँजीगत व्यय (Permanent Capital Expenditure) का पूर्ण विवरण तैयार किया जाए।

(x) स्थगित आगम-व्यय (Deferred Revenue Expenditure) की सूची बनाई जाए।

(xi) जिन संलेखों (Documents) को अंकेक्षक को देखने का अधिकार है, उनकी सूची बनाई जाए।

(xii) प्रबन्धकों का नाम, पता आदि लिखकर सूची बनाई जाए।

ऊपर दिए गए सभी विषयों की जानकारी अंकेक्षक अपने नियोक्ता से प्राप्त करता है। इस जानकारी की उसे अंकेक्षण काल के मध्य समय-समय पर आवश्यकता पड़ती रहती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि अंकेक्षक को एक **अंकेक्षण स्मारक पुस्तिका** (Audit Memorandum Note Book) तैयार करनी चाहिए जिसमें उसे सभी उपयोगी सूचनाओं तथा स्पष्टीकरणों को लिखना चाहिए। इस पुस्तिका का एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि प्रबन्धकों से बार-बार जानकारी प्राप्त करने की असुविधा से अंकेक्षक को मुक्ति मिल जाती है।

(11) अंकेक्षण कार्य का विभाजन अथवा वितरण (Division or Distribution of Audit Work): अंकेक्षक अनेक संस्थाओं का अंकेक्षण करता है। यह काम वह अकेला नहीं कर सकता। अतः संपूर्ण कार्य को निश्चित अवधि में उचित ढंग से सम्पादित करने के लिए कार्य विभाजन अर्थात् वितरण करना आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक **चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट** (C.A.) के पास प्रशिक्षण हेतु कुछ सहायक होते हैं जो **आर्टीकल क्लर्क** (Article Clerk) कहलाते हैं। इन सहायकों में से कुछ पुराने और अनुभवी होते हैं जो **सीनियर** (वरि) कहलाते हैं और अन्य नये होते हैं जो **जूनियर** (कनि) कहलाते हैं। इन सीनियर और जूनियर सहायकों के मध्य कार्य-विभाजन करके ही सारा काम पूरा करना संभव होता है। जूनियर क्लर्क्स को सीनियर के मार्गदर्शन के अंतर्गत ही कार्य करना होता है।

कार्य विभाजन का कोई आधारभूत सिद्धान्त नहीं है। यह प्रत्येक अंकेक्षण की आवश्यकता पर निर्भर करेगा। साधारणतया सहायक पुस्तकों के लेखों का **प्रमाणकों** (Vouchers) से मिलान, खाताबही की खतौनी की जांच, जोड़ों तथा शेषों की जांच तथा शेषों का तलपट से मिलान इत्यादि कार्य जूनियर सहायकों को देना चाहिए।

इसके विपरीत, अदत व्यय की जांच, ह्रास की रकम के आयोजन का ढंग, अप्राप्य तथा संदिग्ध ऋणों के लिए की गई व्यवस्था, रोकड़ बही की जांच, सम्पत्तियों तथा देनदारियों का मूल्यांकन आदि कार्य सीनियर सहायकों को सौंपने चाहिए। दोनों प्रकार के सहायकों को अंकेक्षक के अधीन काम करना होता है। ध्यान रहे की जांच की सफलता कार्य के वितरण पर काफी हद तक निर्भर करती है।

कुछ भी हो, अंतिम उत्तरदायित्व अंकेक्षक का ही होता है क्योंकि वह अंकेक्षण के संबंध में अंतिम रिपोर्ट देता है तथा उस पर हस्ताक्षर करता है।

(12) अंकेक्षण कार्यक्रम (Audit Programme): अंत में समस्त पूर्व जानकारी करने के पश्चात् अंकेक्षक को अपने कार्य करने का कार्यक्रम बनाना चाहिए कि वह किस प्रकार कार्य को प्रारंभ करेगा व कौन-कौन व्यक्ति कार्य को करेंगे।

■ 2. अंकेक्षण का कार्यक्रम (Audit Programme)

● 2.1 आशय (Meaning)

किसी संस्था का अंकेक्षण प्रारंभ करने से पूर्व अंकेक्षक द्वारा अपने सहायकों के निर्देशन एवं नियंत्रण हेतु बनाई गई कार्य की एक विस्तृत योजना को ही अंकेक्षण कार्यक्रम कहा जाता है। अत: अंकेक्षण कार्यक्रम अंकेक्षण प्रक्रिया को अपनाने की एक **क्रमबद्ध** (Systematic), विस्तृत एवं लिखित योजना होती है जिसके आधार पर अंकेक्षक एवं उसका स्टाफ अंकेक्षण का कार्य करते हैं। यह एक **प्रकार का** विवरण अथवा सूची होती है जो कि अंकेक्षक द्वारा किये जाने वाले कार्य को दर्शाती है। इसको बनाने का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण कार्य में **तारतम्य** (Link) बनाये रखना है। जिस प्रकार एक भवन निर्माणकर्ता भवन-निर्माण से पूर्व भवन का नक्शा, कार्य किस प्रकार किया जायेगा, कितने समय में पूरा होगा, कितने श्रमिक लगाने होंगे, इत्यादि विषयों पर विचार करके योजना बनाता है, ठीक इसी प्रकार एक अंकेक्षक अपने कार्य करने का नक्शा बनाता है, अर्थात् अपने कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करता है और इसी रूप रेखा के अनुसार वह अंकेक्षण का कार्य करता है।

● 2.2 परिभाषाएं (Definitions)

अंकेक्षण कार्यक्रम को कुछ प्रमुख विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है:

(1) **होवार्ड स्टेटलर** के अनुसार, **''नियोक्ता के वित्तीय विवरणों के विषय में राय बनाने हेतु पालन की जाने वाली समस्त क्रियाओं की रूपरेखा को अंकेक्षण कार्यक्रम कहते हैं।''** (Audit Programme is an outline of all procedures to be followed in order to arrive at an option concerning a client's financial statements. -**Howard Stettler**)

(2) **आर्थर डब्ल्यू होम्स** के अनुसार, **''एक लोचदार योजनाबद्ध जांच की प्रक्रिया को अंकेक्षण कार्यक्रम कहते हैं।''** (An audit programme is flexible planned procedure of examination. - **Arthur W. Holmes**)

(3) **डब्ल्यू. डब्ल्यू. बिग** के अनुसार, **''एकरूपता लाने के लिए और यह निर्णय करने के लिए कि लेखाकर्म के सम्पूर्ण कार्य का आंकेक्षण हो जाये, एक कार्यक्रम बनाया जाता है जिसे अंकेक्षण कार्यक्रम कहते हैं जिसमें प्रत्येक कर्मचारी के हस्ताक्षर होते हैं।''** (An audit programme is a detailed plan of the auditing work to be performed, specifying the procedure to be followed in verification of each item in the financial statements and giving the estimated time required. - **W.W. Biggs**)

(4) **स्पाइसर एवं पैगलर** के अनुसार, **''एकरूपता लाने और यह निर्धारित करने के लिए कि वह सब कार्य कर लिया गया है जिसे किया जाना चाहिए, एक कार्यक्रम बनाना आवश्यक हो जाता है। इसमें कार्य के जिस भाग के लिए जो लिपिक उत्तरदायी हो, वह उसे पूरा करने पर अपने हस्ताक्षर कर देता है। इस प्रकार मालिक को कार्य की प्रगति एवं छूटे हुए कार्य का ज्ञान भी हो सकता है।''**

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर अंकेक्षण कार्यक्रम की एक आदर्श परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है, **''नियोक्ता के खातों का अंकेक्षण सुचारू रूप से व एक निर्धारित अवधि में समाप्त करने हेतु, कार्य में एकरूपता लाते हुए अंकेक्षक द्वारा किये जाने वाले कार्य की योजना को ही अंकेक्षण कार्यक्रम कहते हैं।''**

● 2.3 उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण

(1) अंकेक्षण कार्यक्रम का पूर्ण विवरण इस प्रकार होना चाहिए ताकि अंकेक्षण में जो कार्य करने हैं उनका पूर्ण विश्लेषण हो सके। इस योजना में प्रत्येक मद के सामने उस लिपिक के हस्ताक्षकर करने के लिए स्थान छोड़ा जाता है जिस पर इसके करने का उत्तरदायित्व डाला जाता है।

(2) यह योजना सदैव लिखित होती है और अंकेक्षक द्वारा बनायी जाती है।

अध्याय 5

आंतरिक नियंत्रण, आंतरिक अंकेक्षण एवं आंतरिक निरीक्षण

(Internal Control, Internal Audit and Internal Check)

■ 1. आंतरिक नियंत्रण (Internal Control)

● 1.1 अर्थ (Meaning)

व्यापार से संबंधित समस्त व्यवहारों एवं पहलुओं के नियंत्रण की प्रणाली को आंतरिक नियंत्रण कहते हैं। सामान्य रूप से आंतरिक नियंत्रण का अर्थ आंतरिक कार्यों को इस प्रकार नियंत्रण करना है, जिससे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके तथा गड़बड़ी, धोखाधड़ी, छल-कपट इत्यादि की कम सम्भावना हो। यह व्यवस्था व्यवसाय के प्रत्येक पहलू को योजनाबद्ध ढंग से नियन्त्रित करती है तथा इस व्यवस्था के माध्यम से ही आर्थिक एवं अनार्थिक सभी क्रियाओं का नियंत्रण किया जाता है। अनुसंधान, **सेवीवर्गीय** (Personnel), प्रशासन संबंधी नियंत्रण, इत्यादि को छोड़कर अन्य लेखें संबंधी नियंत्रण आंतरिक नियंत्रण कहलाते हैं।

आंतरिक नियंत्रण का अर्थ केवल आंतरिक निरीक्षण तथा आंतरिक अंकेक्षण ही नहीं है वरन् वित्तीय या अन्य कैसे भी नियंत्रणों की पूरी प्रणाली है जो प्रबंध द्वारा कम्पनी के कार्यालय को सुचारु रूप से चलाने के लिए, सम्पत्तियों की सुरक्षा के लिए और यथासंभव उसके लेखों को विश्वासपूर्ण तथा सही बनाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। (Internal Control does not mean only Internal Check and Internal Audit but the whole system of control, financial and otherwise established by the management in order to carry on the business of the company in an orderly manner, safeguard its assets and secure as far as possible the accuracy and reliability of its records.')

अत: कैसा भी नियंत्रण चाहे वह आर्थिक हो अथवा संस्था के प्रबंध से संबंधित हो, आंतरिक नियंत्रण कहलाता है। आंतरिक नियंत्रण का प्रयोग विस्तृत अर्थ में किया जाता है और इसके अंतर्गत आंतरिक अंकेक्षण, आंतरिक निरीक्षण आदि सभी प्रकार के नियंत्रण आते हैं।

● 1.2 परिभाषाएं (Definitions)

आंतरिक निरीक्षण की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **स्पाइसर एवं पेगलर** के अनुसार, ''**आंतरिक नियंत्रण से तात्पर्य प्रबंध द्वारा व्यापार चलाने के लिए स्थापित वित्तीय व अन्य नियंत्रण की संपूर्ण प्रणाली से है जिसमें आंतरिक निरीक्षण, आंतरिक अंकेक्षण व आंतरिक नियंत्रण के अन्य तरीके सम्मिलित हैं।**'' (Internal control is best regarded as indicating the whole system of control, financial and otherwise established by the management in the conduct of a business, including internal check, internal audit and other forms of control. – **Spicer and Pegler)**

(2) **एच० स्टेटलर** के अनुसार, ''**आंतरिक निरीक्षण व आंतरिक अंकेक्षण, वे प्रमुख साधन हैं जिनके माध्यम से व्यापार प्रबंधक उन विस्तृत गतिविधियों व कार्यों जिनके लिए वह उत्तरदायी है, आंतरिक नियंत्रण रखता है।**''

(Internal check and Internal audit comprise the principal means by which business management maintains internal control over the extensive activites and operations for which it is responsible. – **H. Stettler**)

(3) डब्ल्यू. डब्ल्यू. बिग के अनुसार, "**आंतरिक नियंत्रण का मुख्य आशय उन समस्त नियंत्रणों से है, जिनमें 'वि... नियंत्रण' और दूसरे नियंत्रण भी आ जाते हैं, जो किसी व्यवसाय में प्रबंधकों की ओर से स्थापित किए जाते हैं, जिसके अन्दर 'आंतरिक निरीक्षण' और 'आंतरिक अंकेक्षण' और अन्य दूसरे प्रकार के नियंत्रण भी सम्मिलित हैं।**" (Internal control is best regarded as indicating the whole system of controls, financial and otherwise, established by the management in the conduct of a business, including internal check, internal audit and other forms of control. – **W.W. Bigg**)

आंतरिक नियंत्रण को निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें से प्रत्येक अति महत्त्वपूर्ण है, जो निम्न है

(i) **संगठनात्मक नियंत्रण** (Organisational Control),

(ii) **लेखाकर्म संबंधी नियंत्रण** (Accounting Control),

(iii) **प्रशासनिक नियंत्रण** (Administrative Control)।

(i) **संगठनात्मक नियंत्रण** (Organisational Control): सभी प्रकार के प्रबंधात्मक नियंत्रण के लिए यह एक ... आवश्यकता है कि व्यवसाय का ढांचा और उसके विभिन्न **भागों** (division)) और **विभागों** (departments) ... पारस्परिक संबंध को समझा जाये। इससे एक अंकेक्षक अपने कार्य-क्षेत्र का निर्धारण करता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति ... लिए अग्रसर होता है। अत: अंकेक्षक का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह संस्था के ढांचे को सही रूप से समझे। कौन-कौन अधिकारी हैं और उनका निश्चित उत्तरदायित्व क्या है आदि जानकारी लेकर वह अपने कार्य की रूपरेखा बनाएगा।

(ii) **लेखाकर्म नियंत्रण** (Accounting Control): इसमें कई प्रकार के नियंत्रणों का समावेश होता है; जैसे-लेखाकर्म नियंत्रण (Accounts Control), **प्रमाणित लागत नियंत्रण** (Standard Cost Control), **बजट नियंत्रण** (Budgetary Control) आदि। प्रत्येक की व्याख्या करना आवश्यक नहीं।

(iii) **प्रशासनिक नियंत्रण** (Administrative Control): "कार्यालय संबंधी कार्य की शुद्धता को देखने के लिए प्रशासनिक नियंत्रण की आवश्यकता होगी।" जैसे-**लागत वित्त नियंत्रण** (Cost-financial Control), **नियंत्रण खाते** (Control Accounts) और क्रय और विक्रय खाते आदि।

सभी प्रकार के नियंत्रण जो किसी व्यापारिक संस्था में व्यक्तिगत **खाता-बहियों** (Personal Ledgers) के संबंध में संपूर्ण **खातों** (Total Accounts) के रखने, रोकड़ प्राप्तियों की जांच करने के लिए यन्त्रों का प्रयोग करने, मजदूरी का लेखा करने के लिए समय का **लेखा करने वाली घड़ियां** (Time Recording Clocks) आदि के प्रयोग के लिए अपनाये जाते हैं, आंतरिक नियंत्रण के अंतर्गत आते है। यदि आंतरिक नियंत्रण सफलता के साथ लागू है, तो अंकेक्षक का कार्य अति सरल हो जाता है और नैत्यक जांच की आवश्यकता भी कम हो जाती है। आंतरिक नियंत्रण द्वारा व्यापार की सम्पत्तियों, व्यापार के लेखाकर्म संबंधी खातों, प्रबंध नीतियों आदि पर योग्य ध्यान रखा जाता है जिससे व्यापार की कुशलता में वृद्धि होती है।

1.3 आंतरिक नियंत्रण के उद्देश्य (Objects of Internal Control)

आंतरिक नियंत्रण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं:

(1) व्यवसाय की सम्पत्तियों की सुरक्षा के उपाय करना; जैसे-विद्यमान सम्पत्तियों की तुलना खातों में विद्यमान (दिखाई गई) सम्पत्तियों से विभिन्न **अंतरालों** (Intervals) पर करना तथा यह सुनिश्चित करना कि प्रबंधकों द्वारा अधिकृत व्यक्तियों को ही सम्पत्तियों तक पहुंचने की अनुमति दी गई है।

(2) लेखाकर्म की शुद्धता की जांच करना तथा देखना की व्यवहारों का सही लेखा किया जा रहा है।

(3) उत्तरदायित्व केन्द्रों (Responsibility Centres) की स्थापना करना तथा प्रत्येक क्रिया के बारे में उत्तरदायित्व निर्धारित करना।

किया जाना चाहिए।

(5) **स्थायी सम्पत्तियों के संबंध में नियंत्रण** (Control Regarding Fixed ...): ... में पूंजी विनियोजित होती है। ऐसी सम्पत्तियों की कीमत प्राय: अधिक होती है जिससे इसमें धोखाधड़ी करने की सम्भावना अधिक होती है। स्थायी सम्पत्ति को प्राप्त करने का अधिकार, खाते की उचित व्यवस्था, ह्रास आयोजन आदि पर ... नियंत्रण होना चाहिए जिससे कि संस्था का चिट्ठा संस्था की **'सच्ची एवं उचित'** (True and Fair) दशा का बोध करा ...

(6) **विनियोग संबंधी नियंत्रण** (Control Regarding Investment): इसका गबन साधारणत: उच्च अधिकारियों ... किया जाता है अत: व्यवसाय के स्वामी द्वारा विनियोगों पर नियंत्रण रखने के लिए विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए।

(7) **स्टॉक संबंधी नियंत्रण** (Control Regarding Stock): स्टॉक में कच्चा माल, अर्द्ध-निर्मित माल तथा पक्का माल सम्मिलित होते है। इस संबंध में नियंत्रण प्रत्येक व्यापारिक संस्थान में भिन्न-भिन्न होता है। माल की प्राप्ति, निर्गमन ... शेष माल की सुरक्षा से संबंधित उचित नियंत्रण की व्यवस्था होनी चाहिए। प्रत्येक व्यवसाय में एक निश्चित समय पर स्टॉक गणना (Stock Taking) अवश्य की जानी चाहिए।

● 1.6 आंतरिक नियंत्रण और अंकेक्षक (Internal Control and Auditor)

आंतरिक नियत्रण की संपूर्ण व्यवस्था पर निर्भर करने से पूर्व अंकेक्षक को इसकी कार्यक्षमता की जांच अवश्य कर लेनी चाहिए। इसके लिए उसे संस्था का **संगठन चार्ट** (Organisation Chart), **निष्पादन के नियम** (Performance Manual), **कार्य वितरण** (Work Allocation) की योजना, **भौतिक व्यवस्था** (Physical Handling) आदि का भली-भांति अध्ययन करना चाहिए। अत: अंकेक्षक को आंतरिक नियंत्रण प्रणाली की भली प्रकार जांच कर लेनी चाहिए। ऐसी जांच करते समय उसको निम्न बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए:

(1) अंकेक्षक को **निर्माणी, व्यापारिक एवं प्रशासकीय प्रक्रियाओं का अध्ययन** तथा माल व सामग्री तथा रोकड़ ... से तथा बाहर भेजने के कार्यों के स्वभाव का अध्ययन करना चाहिए।

(2) अंकेक्षक को **पुस्तपालन व लेखाकर्म की पद्धति का अध्ययन** करना चाहिए। इस विषय में रोकड़, सामग्री तथा सम्पत्ति की संस्था में प्राप्ति की व्यवस्था की जांच करनी चाहिए। वैसे रोकड़ के भुगतान की ओर भी विशेष ध्यान ... चाहिए कि बिना किसी सामान या सज्जा की प्राप्ति के यह भुगतान कर तो नहीं दिया गया है। उसी प्रकार वस्तु ... बिना भुगतान प्राप्त किये तो किसी को नहीं दी गई है।

(3) पुस्तकों की प्रविष्टियों के संदर्भ में भी आंतरिक नियंत्रण की व्यवस्था की जांच करनी चाहिए। विभिन्न व्यक्तियों ... संस्थाओं के शेषों का **सकल खातों** (Total Accounts) से मिलान कर लेना चाहिए।

(4) लेखों की **प्रतिनिधि मदों** (Representative Items) के चयन के द्वारा आंतरिक नियंत्रण की प्रणाली की जांच ... चाहिए।

(5) प्रक्रियात्मक परीक्षण (Procedural Tests) के प्रयोग में अशुद्धियों के कारणों तथा स्वभाव का भी पता ... देखना आवश्यक है कि खाते कहां तक व्यापार की सही तथा ठीक परिस्थिति के परिचायक हैं।

आंतरिक नियंत्रण की संपूर्ण व्यवस्था अंकेक्षक के कार्यभार को कम तो कर सकती है लेकिन उसके उत्तरदायित्व को ... करती। अंकेक्षक किस सीमा तक आंतरिक नियंत्रण पर निर्भर करे, यह व्यवसाय विशेष की परिस्थितियों तथा व्यवहार की प्रकृति ... करता है।

■ 2. आंतरिक निरीक्षण (Internal Check)

● 2.1 अर्थ (Meaning)

आंतरिक निरीक्षण से आशय एक ऐसी व्यवस्था से है जिसके अंतर्गत एक संस्था के समस्त व्यवहारों तथा इससे सम्बन्धित लेखा-कार्यों को कार्यालय के विभिन्न कर्मचारियों में इस प्रकार बांट दिया जाता है **कि एक कर्मचारी द्वारा किए गए काम की** ...

स्वतन्त्र रूप से दूसरे कर्मचारी द्वारा की जा सके। इस व्यवस्था के अनुसार कर्मचारियों के मध्य कार्यों का विभाजन, उनकी योग्यतानुसार, इस प्रकार किया जाता है कि कोई भी एक कर्मचारी किसी एक कार्य या व्यवहार को प्रारम्भ से लेकर अंत तक न करे। इस प्रकार इस व्यवस्था में किसी एक व्यवहार से सबंधित समस्त लेखा एक ही कर्मचारी के हाथ में नहीं रहता। उदाहरण के लिए शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों से फीस लेने के कार्य को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है कि एक क्लर्क केवल वाणिज्य के विद्यार्थियों की फीस ले और दूसरा केवल विज्ञान के विद्यार्थियों की फीस ले, तीसरा केवल कला विद्यार्थियों की फीस ले और इन क्लर्कों द्वारा ली गई फीस की पोस्टिंग कोई अन्य क्लर्क करे तथा अन्य कोई क्लर्क इस पैसे को बैंक में जमा कराए। यदि किसी कर्मचारी के कार्य में अशुद्धि रह जाती है अथवा कोई कर्मचारी छल-कपट करता है तो जांचने वाला कर्मचारी तुरन्त उसका पता लगा लेगा। इस प्रकार आंतरिक निरीक्षण प्रणाली के अंतर्गत समस्त व्यवहारों की जांच भी साथ-साथ होती रहती है जिसका लाभ यह है कि जब तक दो-तीन कर्मचारी आपस में मिल न जाएं तब तक कपट की सम्भावना नहीं रहती।

• 2.2 परिभाषा (Definition)

आंतरिक निरीक्षण की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न शब्दों में दी है जिनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों की परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **स्पाइसर एवं पैगलर** के अनुसार, ''**आंतरिक निरीक्षण कर्मचारियों के कर्तव्यों की ऐसी व्यवस्था है, जिसमें एक ही व्यक्ति किसी लेन-देन से संबंधित सभी कार्यों को न लिख सके, जिससे कि दो या अधिक व्यक्तियों की सांठ-गांठ के बिना छलकपट न हो सके तथा इसके साथ-साथ अशुद्धियों की सम्भावनाएं न्यूनतम हो जाएं।**'' (A system of internal check is an arrangement of staff duties whereby no one person is allowed to carry through to record every aspect of a transaction so that, without collusion between two or more persons, fraud is prevented and at the same time the possibilities of errors are reduced to minimum. – **Spicer and Pegler**)

(2) **एल. आर डिक्सी** के अनुसार, ''**आंतरिक निरीक्षण नैत्यक हिसाब-किताब की वह व्यवस्था है जिसमें त्रुटि और गबन स्वत: रुक जाते हैं अथवा पुस्तपालन के संचालन द्वारा पकड़ में आ जाते हैं।**'' Internal check may be defined as such an arrangement of the accounting routine that errors and frauds are automatically prevented or discovered by the very operation of the book-keeping itself. – **L.R. Dicksee**)

(3) **डी. पॉला** के अनुसार, ''**व्यवहार में आंतरिक निरीक्षण निरन्तर चलने वाला आंतरिक अंकेक्षण है जो कर्मचारियों द्वारा स्वत: ही किया जाता है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति का कार्य दूसरे व्यक्तियों के द्वारा स्वतन्त्र रूप से जांचा जाता है।**'' (An internal check means practically a Continuous Internal Audit carried on by the staff itself, by means of which the work of each individual is independently checked by other members of the staff. – **De Paula**)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर आंतरिक निरीक्षण की एक आदर्श परिभाषा निम्न प्रकार दी जा सकती है:

आंतरिक निरीक्षण व्यावसायिक प्रबंध की वह व्यवस्था है जिसके अनुसार समस्त व्यवहारों तथा इनके लेखा-कार्य को इस प्रकार बांटा जाता है ताकि कोई भी कर्मचारी किसी भी व्यवहार के सभी पक्षों का लेखा अकेले न कर सके और प्रत्येक कर्मचारी का कार्य दूसरा कर्मचारी नियमित तौर पर परीक्षित कर सके ताकि त्रुटियों व कपटों का होना असंभव हो जाए और यदि हो भी तो उनका शीघ्र पता चलता रहे।

• 2.3 आंतरिक निरीक्षण के लक्षण अथवा तत्त्व (Features or Elements of Internal Check)

आंतरिक निरीक्षण की उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर इसके निम्न लक्षण (तत्व) प्रकट होते हैं:

(1) यह प्रणाली **आंतरिक नियंत्रण** (Internal Control) की संपूर्ण व्यवस्था का **अभिन्न** (Integral) अंग है।

(2) यह प्रणाली हिसाब-किताब रखने वाले कर्मचारियों में कार्य विभाजन करने से सबंधित है।

(3) इस प्रणाली में कोई भी कर्मचारी किसी लेन-देन के लेखे को प्रारम्भ से अंत तक नही कर सकता।

नैत्यक जाँच एवं प्रमाणन
(Routine Checking and Vouching)

1. नैत्यक जाँच (Routine Checking)

प्रत्येक व्यवसाय में कुछ न कुछ लेखा पुस्तकों को रखा ही जाता है तथा इनकी दैनिक जाँच की जाती है। इन पुस्तकों तथा लेखों की दैनिक जाँच को ही नैत्यक जाँच (Routine Checking) कहते है। अतः नैत्यक जाँच से आशय प्रारम्भिक लेखा-पुस्तकों एवं खाताबहियों की गणित संबधी जाँच से है जिससे लिपिकों द्वारा की गई त्रुटियों का अथवा छोटे-मोटे कपटों का पता लगाया जाता है। लेखों में अंकों तथा तत्सम्बन्धित गणना की शुद्धता का पता नैत्यक जाँच द्वारा ही लगता है। (Routine checking means checking of arithmetical accuracy of books of original entry and ledgers with a view to detect clerical errors and frauds of a very simple nature.)

- **1.1 नैत्यक जाँच में सम्मलित कार्य (What does Routine Checking Include?)**

  नैत्यक जाँच में निम्नलिखित कार्य शामिल है:

  (1) विभिन्न गणनाओं (Calculations) की जाँच करना; जैसे-जोड़, उपजोड़, अगले पृष्ठ पर ले जाए गए जोड़ आदि।

  (2) प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों के खाताबही में की गई खतौनी की जाँच करना।

  (3) विभिन्न खातों के शेषों की जाँच करना।

  (4) खाता-बही से तलपट में ले जाए गए शेषों की जाँच करना।

- **1.2 नैत्यक जाँच के उद्देश्य (Objects of Routine Checking)**

  (1) लेखा-पुस्तकों में लिखे गए लेखों की **गणित संबंधी शुद्धता** (Arithmetical Accuracy) का पता लगाना।

  (2) यह ज्ञात करना कि प्रारम्भिक लेखे की पुस्तकों से सही खातों में **खतौनी** (Posting) की गई है या नहीं और उन खातों का शेष सही निकाला गया है या नहीं।

  (3) विशेष चिह्नों का प्रयोग कर यह ज्ञात करना कि रकमों को अंकेक्षण के पश्चात् बदला तो नहीं गया।

नैत्यक जाँच करने के लिए विभिन्न प्रकार के चिह्न प्रयोग में लाए जाते है, अतः कुछ लोग इसे **चिह्न लगाने का कार्य** (Tick work) और कुछ इन चिह्नों को **जाँच के निशान** (Check marks) कहते हैं। चिह्नों के प्रयोग के संबंध में निम्न सावधानियां बरतनी चाहिए:

(i) चिह्न छोटा तथा स्पष्ट होना चाहिए।

(ii) भिन्न-भिन्न क्रियाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के चिह्न प्रयोग करना चाहिए।

(iii) लेखों वाले रंग से इनका रंग भिन्न होना चाहिए।

(iv) चिह्नों का आशय गुप्त रखना चाहिए।

(v) प्रति वर्ष चिह्नों के रंगों को बदलना अच्छा रहता है। चिह्न किस स्थान पर लगाए जाएं यह महत्त्वपूर्ण है। साधारणतया पोस्टिंग के सत्यापन के लिए चिह्न उस राशि के बाएं ओर लगाया जाता है जिसे जाँचा जा चुका है और इस राशि के

प्रमाणन के साथ जाँच करने के लिए दाहिनी ओर चिन्ह लगाया जाता है। जोड़ों की जाँच होने पर जोड़ के नीचे चिन्ह लगाया जाता है। यह अति आवश्यक है कि चिन्हों के स्थान के बारे में पहले से ही निर्णय ले लिया जाए।

अंकेक्षण करते समय चिह्नों का उसी प्रकार ध्यान रखना चाहिए जैसा कि चलते समय सड़क के बारे में, बातें करते समय शब्दों के बारे में तथा क्रय करते समय जेब का रखा जाता है। इन सभी दशाओं में थोड़ी-सी लापरवाही काफी उलझनें एवं कठिनाई पैदा कर देती है।

● 1.3 नैत्यक जाँच के लाभ (Advantages of Routine Checking)

नैत्यक जाँच एक अत्यन्त सरल कार्य है जोकि साधारण योग्यता वाले व्यक्तियों से कराया जाता है। सरल होते हुए भी यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उस अन्तिम जाँच का यह आधार है जिसके सहारे अंकेक्षक अपनी रिपोर्ट देता है। नैत्यक जाँच से यह विश्वास हो जाता है कि लेखों में कोई गणित संबंधी अशुद्धि नहीं रह गई है तथा खतौनी ठीक की गई है। इससे साधारण छल-कपट आसानी से पकड़े जाते हैं और अंक परिवर्तन अगर किया गया हो तो चिह्नों के प्रयोग से उसका पता भी लग जायेगा। संक्षेप में नैत्यक जाँच के निम्न लाभ हैं:

(1) **सरल** (Simple): नैत्यक जाँच इतनी सरल है कि इसे कोई साधारण योग्यता वाला व्यक्ति भी आसानी से कर सकता है। इसलिए यह जाँच प्राय: कनिष्ठ क्लर्कों से करायी जाती है।

(2) **गणित संबंधी शुद्धता का ज्ञान** (Knowledge of Arithmatical Accuracy): इस जाँच के द्वारा 'प्रारम्भिक लेखों की पुस्तकों' में गणित सबधी त्रुटियों का ज्ञान शीघ्र हो जाता है।

(3) **खतौनी की शुद्धता का ज्ञान** (Konwledge of accuracy of Postings) नैत्यक जाँच द्वारा खाता बही में किए गए लेखों की शुद्धता का भी ज्ञान हो जाता है तथा यदि कहीं त्रुटि हो तो उसे आसानी से पकड़ा जा सकता है।

(4) **गलती एवं गबन का पकड़ा जाना** (Detection of Errors and Fraud): प्रारम्भिक लेखा पुस्तकों एव खाताबही की जाँच पर विशेष ध्यान दिए जाने के कारण गलती तथा कपट आसानी से पकड़ में आ जाते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि कई बार सैद्धान्तिक त्रुटियों का पता चलना सम्भव नहीं होता।

(5) **अंक परिवर्तन का पता चलना** (Change in Figure Comes to Light): नैत्यक जाँच में विभिन्न चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। यह सभी चिह्न गुप्त होते हैं। अत: अंकेक्षण के बाद अंकों के परिवर्तन की सम्भावना नहीं रहती है। यदि फिर भी अंकों में परिवर्तन किए गए हों, तो उनका पता शीघ्रता से लग जाता है।

(6) **अन्तिम खातों की जाँच में सहायक** (Helpful in Checking of Final Accounts): प्रारम्भिक पुस्तकों एव खाता-बहियों की शुद्धता की जाँच के पश्चात् तलपट **व्यापार एवं लाभ-हानि खाते** (Trading and Profit & Loss Account) तथा चिट्ठे की जाँच सरल हो जाती है। अत: अन्तिम खातों की जाँच का आधार भी नैत्यक जाँच ही है।

● 1.4 नैत्यक जाँच के दोष (Disadvantages of Routine Checking)

नैत्यक जाँच में गुण होते हुए भी इसमें कुछ दोष पाये जाते हैं जो निम्न हैं:

(1) **कार्य में शीघ्रता एवं लापरवाही** (Haste and Carelessness in Work): चूंकि नैत्यक जाँच का कार्य शीघ्रता व लापरवाही से किया जाता है इसलिए इसमें त्रुटियां रह जाने की आशंका रहती है जिससे बाद की जाँच व्यर्थ जाती है।

(2) **कार्य यन्त्रवत् होना** (Work becomes Mechanical): यह जाँच पूर्णत: यन्त्रवत् होती है अत: कार्य में नीरसता आ जाती है। यह कार्य कम योग्यता वाले कर्मचारियों द्वारा किया जाता है, वे भी अपने दायित्व को पूर्णत: नहीं निभाते हैं।

(3) **सैद्धान्तिक त्रुटियों का पता न चलना** (Non-disclosure of Errors of Principles): नैत्यक जाँच का कार्य साधारण योग्यता रखने वाले व्यक्ति द्वारा किए जाने के कारण ये सैद्धान्तिक एवं **पूरक त्रुटियों** (Compensatory Errors) को पकड़ने में असमर्थ रहते है जिससे ये त्रुटियां छिपी रह जाती हैं।

(4) **मानक** (Standards): परीक्षण जाँच के मानक पहले से निश्चित करना बहुत कठिन होता है। व्यवसाय विशेष की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस जाँच की **उपयुक्तता** (Suitability) तथा सीमा का निर्धारण स्वयं अंकेक्षक ही करता है।

(5) **आंतरिक निरीक्षण** (Internal Check): परीक्षण जाँच की सफलता आंतरिक निरीक्षण प्रणाली की व्यवस्था पर निर्भर करती है। यदि संस्था में विद्यमान आंतरिक निरीक्षण प्रणाली कमजोर है तो ऐसी दशा में विस्तृत जाँच करना आवश्यक हो जाता है।

(6) **उद्देश्य** (Object): परीक्षण जाँच का उद्देश्य अंकेक्षक को विस्तृत जाँच से छुटकारा देना है। इसके द्वारा बचाए गए समय को अंकेक्षक अधिक महत्त्वपूर्ण व्यवहारों की जाँच में लगा सकता है।

■ 2. प्रमाणन का अर्थ (Meaning of Vouching)

साधारणत: यह देखा गया है कि जब कभी कोई वस्तु बाज़ार में क्रय की जाती है तो विक्रेता वस्तु के साथ ही एक रसीद भी देता है जिस पर वस्तु का विवरण, दर, कीमत आदि लिखी होती है। इस रसीद को अंकेक्षण की भाषा में **प्रमाणक** (Voucher) कहते हैं। प्राय: व्यक्ति इस रसीद का कोई महत्त्व नहीं समझते तथा इसे फेंक देते है किन्तु एक व्यावसायिक संस्था के लिए इसका बहुत महत्त्व है। अत: प्रत्येक व्यवसायी इस रसीद को बड़ी सावधानी से संभाल कर रखता है। वास्तविकता तो यह है कि प्रारम्भिक बहियों (लेखा-पुस्तकों) में लेखे इन्हीं रसीदों के आधार पर किए जाते हैं तथा लेखांकन प्रविष्टियों की सच्चाई का यही प्रमाण है। अत: लेखा-पुस्तकों में कोई भी ऐसी **प्रविष्टि** (Entry) नहीं होनी चाहिये जिसके प्रमाणक न हों और कोई ऐसा प्रमाणक नहीं होना चाहिए जिसकी प्रविष्टि न की गई हो। (There should be no entry without its voucher and there should be no voucher without its entry) इस प्रकार प्रमाणन का अर्थ लेन-देन के लेखों का संबंधित प्रमाणकों से जाँच करना है जिससे लेखा-पुस्तकों में किए गए लेखों की शुद्धता, वैधता, पूर्णता तथा नियमानुकुलता के विषय में पता लग सके अर्थात् जो भी सौदे (Transactions) लिखे गए हैं वे उचित, ठीक तथा अधिकृत हैं।

● 2.1 परिभाषाएं (Definitions)

कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई प्रमाणन की परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) जे. आर. बाटलीबॉय के अनुसार, **"प्रारम्भिक लेखा-पुस्तकों में विद्यमान मदों की सत्यता की जांच करने को प्रमाणन कहते हैं।"** (Vouching means testing the truth of the items appearing in the books of original entry- **J.R. Batliboi**)

(2) आर्थर डब्ल्यू. होम्स के अनुसार, **"एक सौदे की सत्यता को प्रमाणित करने वाले आधारभूत सबूत की जाँच को प्रमाणन कहते हैं। प्रमाणन की प्रक्रिया का उद्देश्य किसी प्रविष्टि का अधिकार, स्वामित्व, अस्तित्व तथा सत्यता सिद्ध करके समर्थन करना है।"** (Vouching is the examination of the underlying evidence which is in support of the accuracy of a transaction. The process of vouching is intended to substantiate an entry by proving authority, ownership, existence and accuracy.- **Arthur W. Holmes**)

(3) लॉरेन्स आर. डिक्सी के अनुसार- **"प्रमाणन का आशय लेखा-पुस्तकों में की गई प्रविष्टियों की उन प्रपत्रों से जाँच करना है, जिनके आधार पर इन्हें लिखा गया है।"** (Vouching refers to the examination of entries made in the account books, with the documents, on the basis of which these have been written.- **Lawrence R. Dicksee**)

(4) रोनाल्ड ए. आइरिश के शब्दों में, **"प्रमाणन एक तकनीकी शब्द है और इसका आशय उन प्रपत्रों की, जिनके आधार पर सौदे लिखे जाते हैं, जाँच करने से है।"** (Vouching is a technical term which refers to the inspection of documentary evidence supporting and substantiating a transaction.- **Ronald A. Irish**)

(5) जॉसेफ लंकास्टर के शब्दों में, **"प्राय: हिसाब-किताब के लेखों की प्रमाणकों अथवा लेखासाक्ष्यों से केवल जाँच करना ही प्रमाणन समझा जाता है। यह विचारधारा गलत है, क्योंकि प्रमाणन में खातों की ऐसी जाँच भी शामिल है जिससे अंकेक्षक संतुष्ट हो जाए कि प्रविष्टि न केवल कागजी प्रमाण के आधार पर की गई है, बल्कि**

■ 3. प्रमाणक (Voucher)

● 3.1 अर्थ (Meaning)

हिसाब-किताब की पुस्तकों में किए गए लेखों की सत्यता का प्रमाण देने वाले प्रलेखों को ही **प्रमाणक** (Voucher) कहते हैं। कोई भी व्यक्ति जब बाज़ार से कोई वस्तु क्रय करता है तो विक्रेता द्वारा एक रसीद या कैशमीमों दी जाती है। यह **व्यवहार** (Transaction) का प्रमाण है तथा इसी के आधार पर क्रेता एवं विक्रेता अपनी-अपनी पुस्तकों में क्रय अथवा विक्रय का लेखा करते हैं। अतः किसी भी व्यवहार (सौदे) को प्रमाणित करने के लिए जिन लिखित प्रपत्रों का प्रयोग किया जाता है, प्रमाणक कहलाते हैं। प्रमाणक एक लिखित कागजी सबूत है। उदाहरण के लिए बीजक, रसीद, अनुबन्ध, मांग-पत्र, बिल, सूची, आदेशों की प्रतिलिपि, पत्र व्यवहार, कार्य-विवरण आदि जिससे कि लेन-देन की पुष्टि की जा सके, प्रमाणक कहलाता है। लेखा-पुस्तकों में प्रविष्टि का यही आधार होता है।

● 3.2 परिभाषाएं (Definitions)

विभिन्न विद्वानों ने प्रमाणक की परिभाषा निम्न प्रकार दी है:

(1) **आर्थर डब्ल्यू. होम्स** के अनुसार, **''सौदे की सत्यता के प्रमाण में आने वाला कोई भी पत्र प्रमाणक कहलाता है।''** (A Voucher is any documentary evidence in support of a transaction.- **Arthur W. Holmes**)

(2) लंकास्टर के अनुसार, "प्रमाणक एक प्रलेखीय साक्ष्य है, जिसके द्वारा लेखा पुस्तकों की प्रविष्टियों की ... ज्ञात की जा सके।" (A voucher may be defined as a documentary evidence by which ... accuracy of the entries may be substantiated.- **Lancaster)**

(3) रोनाल्ड ए. आईरिश के अनुसार, "एक रसीद, बीजक या एक प्रसंविदा या समझौता .... या ... भी लिखित प्रमाण जो कि लिखित सौदों की पुष्टि करे, प्रमाणक कहलाता है।" (A voucher may ... receipt, an invoice, an agreement, a material requisition slip or, in short, any ... written evidence which confirms a written transaction.- **Ronald A. Irish)**

(4) जे. आर. बाटलीबॉय के अनुसार, "हिसाब-किताब की पुस्तकों में किए गए लेखों की सत्यता के प्रमाण ... आने वाले पत्र को प्रमाणक कहते हैं।" (A voucher may be defined as a documentary evidence ... an entry appearing in books of accounts.- **J.R. Batliboi)**

उपरोक्त परिभाषाओं से प्रमाणक की निम्नलिखित विशेषताएं प्रकट होती हैं:

(i) प्रमाणक एक लिखित प्रमाण है।

(ii) प्रमाणकों के आधार पर ही व्यापारिक लेन-देनों का लेखा किया जाता है।

(iii) प्रमाणक लेखों के सबूत (Evidence) के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

(iv) प्रमाणक लेन-देनों का पूरा विवरण प्रस्तुत करते हैं।

(v) प्रमाणकों से लेखों की शुद्धता एवं वास्तविकता का पता चलता है।

● 3.3 प्रमाणकों के भेद (Kinds of Vouchers)

प्रमाणक निम्नलिखित दो प्रकार के हो सकते हैं:

(1) मूल प्रमाणक (Primary Vouchers): किसी प्रविष्टि से संबंधित जो मौलिक लिखित प्रमाण होता है उसे मूल प्रमाणक कहते हैं। जैसे - संस्था द्वारा माल क्रय करने का मूल प्रमाणक **बीजक** (Invoice) है। इसी प्रकार यदि कोई ... भुगतान करता है तो उसे रूपया देने के बदले में जो रसीद मिलती है, वह भुगतान का मूल प्रमाणक है।

(2) गौण प्रमाणक (Subsidiary Voucher): मूल प्रमाणक की अनुपस्थिति में उसकी प्रतिलिपि या ... (Transaction) से संबंधित अन्य प्रपत्र जो अंकेक्षक को व्यवहार (सौदे) की वास्तविकता के प्रति संतुष्ट कर ... प्रमाणक कहलाते है। कई बार जब किसी सौदे से संबंधित मूल प्रमाणक उपलब्ध नहीं हो पाता, तो उस सौदे की सत्यता ... प्रमाणित करने के लिए या तो मूल प्रमाणक की प्रतिलिपि अंकेक्षक के समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं अथवा अन्य ... प्रपत्र प्रस्तुत किया जाता है जिससे अमुक सौदे की सत्यता जांची जा सके। ऐसी प्रतिलिपि तथा अन्य प्रपत्र ... प्रमाणक' कहते है। जैसे- **बिक्री के लिए प्राप्त आदेश, जहाजी बिल्टी की प्रतिलिपि, पैकिंग नोट्स** की प्रतिलिपि **गौण प्रमाणक है, जबकि इनका बीजक मूल प्रमाणक है।**

कभी-कभी मूल प्रमाणक संस्था के पास मौजूद होते हुए भी अंकेक्षक अपनी शंका के समाधान के लिए गौण-प्रमाणक मांगता है। जैसे पहले उधार खरीदे गए माल का अब भुगतान करने पर, इस समय प्राप्त रसीद (मूल प्रमाणक) के साथ-साथ अंकेक्षक ... (Discount) आदि के संबंध में अपनी शंका का समाधान करने के लिए बीजक, पत्र-व्यवहार, आदेश की ... माल-भीतरी-पुस्तक आदि (गौण प्रमाणक) जांच करने के लिए मांगता है।

● 3.4 प्रमाणकों की जाँच (Examination of Vouchers)

प्रमाणन का आधार **प्रमाणक** (Voucher) है, जिसके अनुसार अंकेक्षक लेखा-पुस्तकों में की गई प्रविष्टियों का मिलान ... **प्रमाणक** झूठे भी हो सकते हैं, वह दोबारा भी दिखाए जा सकते हैं, वह संबंधित व्यापार के न होकर किसी कर्मचारी या अधिकारी के **व्यक्तिगत** (Personal) भी हो सकते है। अंकेक्षक का कार्य केवलमात्र यह देखना ही नहीं है कि प्रत्येक प्रमाणक का लेखा पुस्तकों में ... गया है या नहीं, बल्कि उसे यह भी देखना होगा कि प्रत्येक प्रमाणक शुद्ध है या नहीं? यदि प्रमाणक ही अशुद्ध होगा तो उसके आधार ...

संपत्तियों व दायित्वों का सत्यापन

(Verification of Assets and Liabilities)

■ 1. सत्यापन का अर्थ (Meaning of Verification)

सत्यापन से आशय अंकेक्षण की एक ऐसी विधि से है जिसमें अंकेक्षक वास्तविक निरीक्षण द्वारा या अन्य विधि द्वारा स्थिति विवरण में दिखाई गई विभिन्न मदों (संपत्तियों तथा दायित्वों) की सत्यता को प्रमाणित करता है।

'संपत्तियों' का अर्थ है कि चिट्ठे की तिथि पर संपत्तियां संस्था में विद्यमान थीं, उन पर स्वामित्व भी संस्था का था, उनका मूल्यांकन भी ठीक था, वह प्रभार मुक्त थीं आदि।

व्यवसाय के स्वामी या स्वामियों को यह जानने की जिज्ञासा रहती है कि व्यवसाय द्वारा उपार्जित लाभ अथवा हानि, जो कि खातों द्वारा दर्शायी गयी है वह सही भी है अथवा नहीं तथा विभिन्न संपत्तियां व दायित्व (जिन्हें स्थिति-विवरण में निरूपित किया गया है) संस्था में विद्यमान है भी अथवा नहीं। अतः सिर्फ प्रमाणन पर ही अंकेक्षक का कार्य समाप्त नहीं हो जाता क्योंकि प्रमाणन के द्वारा अंकेक्षक प्रमाणकों को देखकर केवल यह ज्ञात कर सकता है कि अमुक संपत्ति संस्था के पास होनी चाहिए किन्तु इससे यह ज्ञात नहीं हो सकता कि वास्तव में वह संपत्ति स्थिति-विवरण के दिन संस्था में विद्यमान है या नहीं अथवा संस्था के अधिकार में है या नहीं। यह सम्भव हो सकता है कि संपत्ति वास्तव में क्रय की गई हो, उससे संबंधित प्रमाणक विद्यमान हों किन्तु यह भी हो सकता है कि वह स्थिति-विवरण की तिथि तक बेच दी गई हो या चोरी हो गई हो या कहीं पर धरोहर रख दी हो अथवा उसका अनुचित विनियोग किया गया हो। अतः प्रमाणक के द्वारा अंकेक्षक यह पता नहीं लगा सकता कि वास्तव में स्थिति-विवरण के दिन कोई संपत्ति संस्था में विद्यमान है या नहीं। इन बातों की जानकारी वह सत्यापन द्वारा करता है।

- **1.1 परिभाषाएं (Definitions)**

सत्यापन को विभिन्न विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है:

(1) **स्पाइसर एवं पैगलर के अनुसार, "संपत्तियों के सत्यापन का अर्थ उनके मूल्य, स्वामित्व तथा स्वत्व, विद्यमानता तथा अधिग्रहण एवं संपत्तियों पर किसी प्रकार का प्रभार होने के बारे में पूछताछ करने से है।"** (The verification of assets implies an enquiry into the value, ownership and title, existence and possession, the presence of any charge on the assets. - **Spicer and Pegler**)

(2) **जोसेफ लंकास्टर के शब्दों में, "संपत्तियों का सत्यापन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा अंकेक्षक चिट्ठे के दाहिने भाग की सत्यता को प्रमाणित करता है। इसके तीन विशिष्ट उद्देश्य समझे जाने चाहियें (अ) संपत्तियों की विद्यमानता का सत्यापन करना, (ब) संपत्तियों का मूल्यांकन करना तथा (स) उन्हें प्राप्त करने के अधिकार की जांच करना।"** (The verification of assets is a process by which the auditor substantiates the accuracy of the right-hand-side of the balance-sheet, and must be considered as having three distinct objects: (a) the verification of the existence of assets, (b) the valuation of assets, and (c) the authority for their acquisitions. - **Joseph Lancaster**)

(3) **जे. आर. बाटलीबॉय** के अनुसार, **"संपत्ति के सत्यापन के संबंध में अंकेक्षक के दो कर्तव्य हैं। उसे स्वयं को इस बात से संतुष्ट कर लेना चाहिए कि संपत्तियां चिट्ठे की तिथि पर वास्तव में विद्यमान थीं और प्रभारों से मुक्त थीं तथा उनका उचित मूल्यांकन किया गया था, दायित्वों के सत्यापन में उसे यह देखना है कि सभी दायित्व उचित राशि पर सम्मिलित कर लिए गये हैं और कोई दायित्व छोड़ा नहीं गया है।"** (The duty of an auditor in verifying the assets is two-fold. He must satisfy himself that they really existed at the date of the balance sheet and were free from any charge and that they have been properly valued. In verifying the liabilities he has to see that all liabilities have been inserted at their proper figures and that no liability has been omitted **-J. R. Batliboi**)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर सत्यापन के संबंध में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि:

(i) चिट्ठा बनाने के दिन संपत्तियां वास्तव में विद्यमान थीं।

(ii) संपत्तियों का अधिकार व स्वामित्व संस्था के पास था।

(iii) संपत्तियाँ व्यापार हेतु उचित रूप से अधिकृत होने पर प्राप्त की गयी थीं।

(iv) संपत्तियों पर किसी प्रकार का प्रभार नहीं है तथा यदि है तो चिट्ठे में दर्शाया गया है तथा इसके अतिरिक्त और कोई प्रभार चिट्ठा बनाने की तिथि को नहीं था।

(v) संपत्ति की भौतिक दशा का ध्यान रखते हुए उसका सही मूल्यांकन किया गया है।

(vi) चिट्ठे में दर्शाये गये मूल्य सही हैं।

(vii) सभी दायित्वों को ठीक राशियों पर दिखाया गया है और कोई भी दायित्व बिना लिखे नहीं रह गया है।

• 1.2 सत्यापन के उद्देश्य (Objects of Verification)

सत्यापन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(1) गणित संबंधी शुद्धता की जांच (Checking of Arithmatical Accuracy): सत्यापन का उद्देश्य इस बात की जांच करना है कि समस्त संपत्ति तथा दायित्वों से संबंधित लेखे गणितात्मक दृष्टिकोण से पूर्ण शुद्ध हैं और उनमें कोई अशुद्धि नहीं रह गई है।

(2) विद्यमानता का पता लगाना (To Assertain the Existence): सत्यापन का एक मुख्य उद्देश्य इस बात का भी पता लगाना है कि स्थिति-विवरण की तिथि पर कोई भी संपत्ति वास्तव में विद्यमान है या नहीं क्योंकि हो सकता है कि स्थिति-विवरण के दिन संपत्ति संस्था के पास विद्यमान ही न हो।

(3) स्वामित्व एवं स्वत्वाधिकार (Ownership and Title): सत्यापन का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि स्थिति-विवरण में दिखाई गई संपत्तियां वास्तव में संस्था की ही हैं और संस्था का इन सभी संपत्तियों पर स्वत्वाधिकार तथा उसे प्रयोग करने का पूर्ण अधिकार है।

(4) कपट व अनियमितता का ज्ञान (Knowledge of fraud and Irregularity): सत्यापन इसलिए भी आवश्यक है कि इस बात की जानकारी प्राप्त की जा सके कि संस्था की संपत्ति व दायित्व के संबंध में किसी प्रकार का कपट या अनियमितता तो नहीं हुई है।

(5) सही मूल्यांकन (Proper Valuation): सत्यापन यह जानने के लिए भी आवश्यक होता है कि संपत्तियों एवं दायित्वों का मूल्यांकन पुस्तपालन एवं लेखांकन के सिद्धान्तों के अनुसार ठीक-ठीक किया गया है या नहीं तथा मूल्यांकन गत वर्ष के अनुरूप है या नहीं।

(6) स्थिति-विवरण का सही व उचित होना (True and Fair View of Balance Sheet): सत्यापन का उद्देश्य स्थिति विवरण द्वारा प्रदर्शित आर्थिक स्थिति की सत्यता की पुष्टि करना है। अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट में इस बात को स्पष्ट करना होता है कि स्थिति-विवरण संस्था की सही एवं उचित आर्थिक दशा का चित्रण करता है और इसका पता वह सत्यापन द्वारा ही लगाता है।

वह अपनी लापरवाही

2. संपत्तियों का सत्यापन (Verification of Assets)

स्थिति-विवरण में दिखाई जाने वाली विभिन्न संपत्तियों के सत्यापन की विधि निम्न प्रकार है:

(1) स्वकीय भूमि एवं भवन (Freehold Land and Building)

स्वकीय संपत्ति व्यापार की स्थायी संपत्ति होती है। जैसे भूमि, भवन आदि। यह व्यावसायिक संस्था के नाम से होती है तथा संस्था यह अधिकार होता है कि चाहे वह इसे बेचे, रखे अथवा दान दे या बन्धक रखकर ऋण ले, कोई दूसरा व्यक्ति हस्तक्षेप नहीं कर कता। इस पर अवधि समाप्त होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् यह **स्वकीय** (Freehold) होती है। इसका सत्यापन निम्न प्रकार या जाता है:

(i) **स्वामित्व** (Ownership): स्वकीय भूमि व भवन के अस्तित्व की जांच **स्वत्व प्रलेख** (Title Deed) से भली-भांति करनी चाहिए और यह ज्ञात करना चाहिए कि स्वत्व संलेख स्वामी के ही नाम में है व संपत्ति पर उत्तम अधिकार प्राप्त है। यदि स्वत्व संलेख देखकर कुछ भ्रम हो तो उसे नियोक्ता के **अभियोगजीवी** (Solicitor) से उसकी वैधता के विषय में एक प्रमाणपत्र अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए और वैधानिक सलाहकार से सलाह अवश्य ले लेनी चाहिए।

(ii) **भौतिक जांच** (Physical Inspection): जिस भूमि व भवन का सत्यापन किया जा रहा है उसकी भौतिक जांच करके यह पता लगाना चाहिए कि वास्तव में भूमि या भवन है भी या नहीं और यह किस कार्य में लाई जा रही है।

संपत्तियों का मूल्यांकन
(Valuation of Assets)

■ 1. मूल्यांकन का अर्थ (Meaning of Valuation)

संपत्तियों का **चिट्ठा** (Balance Sheet) बनाए जाने की तिथि पर व्यापार के लिए क्या मूल्य है, यह ध्यान रखते हुए संपत्तियों का मूल्य आंकना ही **मूल्यांकन** (Valuation) कहलाता है। दूसरे शब्दों में मूल्यांकन का अर्थ उस मुद्रा मूल्य को ज्ञात करना है जिस पर व्यवसाय की लेखा पुस्तकों द्वारा प्रकट की गई संपत्तियों को चिट्ठे में दिखाया जाता है। यहां मूल्यांकन से आशय अंकेक्षक द्वारा संपत्तियों के पूर्व-निर्धारित मूल्यों की आलोचनात्मक जांच से है जो वह सामान्य स्वीकृत सिद्धान्तों तथा **परिपाटियों** (Conventions) के आधार पर करता है। मूल्यांकन का मतलब संपत्तियों के मूल्य की गणना करने से नहीं है। मूल्य निर्धारण का कार्य व्यापार के स्वामी, प्रबन्धकों अथवा विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। अंकेक्षक तो केवल प्राप्त तथ्यों तथा स्पष्टीकरणों के आधार पर विभिन्न संपत्तियों के अनुमानित मूल्यों की सत्यता के बारे में अपनी राय प्रकट करता है।

किसी संस्था के स्थिति विवरण का मुख्य उद्देश्य उस संस्था की वास्तविक और सही स्थिति को प्रकट करना है और यह बताना है कि संस्था की स्थिति **'चालू संस्था के नाते'** (As a going concern) किस प्रकार की है। **चिट्ठे** (Balance Sheet) में संपत्तियों का विवरण और इनका मूल्य लिखा जाता है। यह मूल्य उसी तिथि का होना चाहिए जिस तिथि पर चिट्ठा बनाया जाता है। इस प्रकार चिट्ठा बनाने की तिथि पर भिन्न-भिन्न **संपत्तियां** (Assets) किस मूल्य पर चिट्ठे में दिखाई जाएं इस को **मूल्यांकन** (Valuation) कहते हैं। मूल्यांकन करना **सत्यापन** (Varification) का ही एक भाग है। प्रत्येक संपत्ति जिस मूल्य पर चिट्ठे में दिखाई गई है, वह उचित है या नहीं, इस बात का पता लगाना मूल्यांकन से संबंध रखता है।

● 1.1 परिभाषा (Definition)

मूल्यांकन को विभिन्न विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है:

लंकास्टर के शब्दों में, **''संपत्तियों के उपयोगिता काल में उनके प्रारम्भिक मूल्यों के समान रूप से बांटने के प्रयत्न को मूल्यांकन कहते हैं।''** (The valuation of assets is therefore an attempt to ensure the equitable distribution of the original outlay over the period of the asset's usefulness. - **Lancaster**)

जे. आर. बाटलीबॉय के अनुसार, **''कम्पनी का चिट्ठा यह दिखाने के लिए नहीं बनाया जाता कि यदि संपत्तियों का मूल्य प्राप्त कर लिया जाए और दायित्वों का भुगतान कर दिया जाए तो पूंजी का क्या मूल्य होगा वरन् यह दिखाने के लिए बनाया जाता है कि पूंजी का विनियोग कैसे किया गया है।''** (A company balance sheet is not drawn for the purpose of showing what the capital would be worth if the assets were realised and liabilities paid off but rather to show how the capital stands invested. **J.R. Batliboi**)

● 1.2 मूल्यांकन के उद्देश्य (Objects of Valuation)

संपत्तियों का मूल्यांकन प्राय: निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता है:

(1) संपत्तियों के मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य किसी व्यापार की आर्थिक स्थिति का सही अनुमान लगाना है।

(2) संपत्तियों के मूल्यांकन का उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना भी है कि **स्थिति विवरण** (Balance Sheet) के दिन संपत्तियां अपने सही मूल्य पर ही उसमें दिखाई गई हैं या नहीं।

(3) मूल्यांकन का उद्देश्य इस बात का ज्ञान प्राप्त करना भी है कि पूंजी का विनियोग कैसे किया गया है।

(4) मूल्यांकन द्वारा यह जानकारी भी प्राप्त की जाती है कि संपत्तियों के खरीदने की तिथि के मूल्य तथा चिट्ठा बनाने की तिथि के मूल्य में कितना अन्तर आया है तथा इसके क्या कारण है।

(5) विभिन्न संपत्तियों के मूल्यांकन से ख्याति के मूल्य का भी अनुमान लगाया जाता है।

(6) अंकेक्षक की सन्तुष्टि हेतु भी संपत्तियों का मूल्यांकन करना अनिवार्य होता है क्योंकि अंकेक्षक को इस बात की रिपोर्ट देनी होती है कि स्थिति-विवरण सही व उचित आर्थिक दशा को दर्शाता है।

• 1.3 मूल्यांकन का महत्त्व (Importance of Valuation)

व्यावहारिक जीवन में संपत्तियों के मूल्यांकन का बहुत अधिक महत्त्व है क्योंकि संपत्तियों के सही मूल्यांकन की अनुपस्थिति में संस्था का स्थिति विवरण उसकी सही व उचित आर्थिक दशा का चित्रण नहीं कर सकता। संपत्तियों का गलत मूल्यांकन न केवल चिट्ठे को प्रभावित करता है वरन् लाभ-हानि खाते को भी प्रभावित करता है। यदि संपत्तियों का मूल्यांकन वास्तविक मूल्य से कम पर किया गया है तो **गुप्त संचय** (Secret Reserve) का निर्माण हो जाएगा जिसका प्रबन्धकों द्वारा दुरुपयोग होगा। इससे विपरीत यदि संपत्तियों का मूल्यांकन वास्तविक मूल्य से अधिक पर किया जाएगा तो अनावश्यक लाभ बढ़ जायेंगे जिससे लाभांश, पूंजी में से बंटना प्रारम्भ हो जाएगा और एक दिन संस्था की पूंजी ही समाप्त हो जाएगी। सही मूल्यांकन न होने पर अन्य पक्ष जैसे- लेनदार, ऋण देने वाले तथा अन्य बाहरी व्यक्तियों को भी धोखा हो सकता है। संक्षेप में मूल्यांकन का निम्न कारणों से महत्त्व है:

(1) व्यापार/कम्पनी की सही आर्थिक दशा का चित्रण होना।

(2) सही लाभ-हानि का ज्ञान होना।

(3) **गुप्त संचय** (Secret Reserve) के बारे में पता लगना।

(4) विनियोजित पूंजी की सुरक्षा पर विश्वास होना, ह्रास आयोजन की पर्याप्तता का ज्ञान होना।

(5) स्थिति विवरण की तिथि पर संपत्तियों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होना।

अतः मूल्यांकन का व्यापारिक जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है।

■ 2. विभिन्न प्रकार के मूल्य (Different Types of Price)

संपत्तियों का मूल्यांकन करते समय विभिन्न प्रकार के मूल्यों का प्रयोग किया जाता है जो कि निम्नलिखित है:

(1) लागत मूल्य (Cost Price): संपत्ति को क्रय करते समय जो मूल्य चुकाया गया है अर्थात् जिस पर वह खरीदी गई है, वही लागत मूल्य होता है। लागत मूल्य में वे समस्त व्यय भी जोड़े जाते हैं जो संपत्ति को लाकर चालू करने के लिए किए जाते हैं जैसे- संपत्ति को लाने का किराया, स्थापना व्यय आदि।

(2) बाजार मूल्य (Market Price): किसी संपत्ति के बाजार मूल्य से आशय उस मूल्य से है जो किसी तिथि को बाजार में प्रचलित है अर्थात यह माना जाता है कि उक्त तिथि को यदि उस संपत्ति को बेच दिया जाए तो इससे इतना मूल्य प्राप्त हो सकता है। बाजार मूल्य तिथि के अनुसार बदलता भी रहता है।

(3) पुस्तक मूल्य (Book Value): जिस मूल्य पर संपत्तियां संस्था की पुस्तकों (स्थिति विवरण) में दिखाई जाती है उसे पुस्तक मूल्य कहते हैं।

(4) उपयोगिता मूल्य (Going Concern Value): संपत्ति के लागत मूल्य में से ह्रास की राशि घटाने के बाद जो राशि बचती है उस मूल्य को उपयोगिता मूल्य या चालू स्थिति मूल्य कहते हैं।

(5) प्राप्य मूल्य (Realisable Value): संपत्ति का वह मूल्य जो उसे बाजार में बेचने से प्राप्त हो सकता है, प्राप्य मूल्य कहलाता है। यहां पर बाजार मूल्य तथा प्राप्य मूल्य में अन्तर समझ लेना आवश्यक है। बाजार मूल्य से तात्पर्य उस मूल्य

अध्याय 9

कंपनी अंकेक्षक: नियुक्ति, शक्ति, कर्तव्य एवं दायित्व

(COMPANY AUDITOR: APPOINTMENT, POWERS, DUTIES AND LIABILITIES)

■ 1. भूमिका (Introduction)

वर्तमान युग में अंकेक्षण का महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया है कि प्रत्येक संस्था, चाहे उसके लिए अंकेक्षण कराना वैधानिक तौर पर अनिवार्य हो अथवा न हो, अपने खातों का अंकेक्षण कराना आवश्यक समझती है। व्यावसायिक संगठन का प्रारूप कोई भी हो, अंकेक्षक का कार्य तो पुस्तकों के लेखों की जाच करना है। **एकाकी व्यापार** (Sole Trade) तथा **साझेदारी** (Partnership) में अंकेक्षण कराना ऐच्छिक है, जबकि कंपनी में अंकेक्षण कराना अनिवार्य है। एकाकी व्यापारी, साझेदारी फर्म तथा कम्पनियां सभी अंकेक्षण कराना चाहेंगी, क्योंकि सभी यह जानना चाहते हैं कि उनके द्वारा जो लेखे तैयार किए गए हैं, क्या वे ठीक हैं और उनमें किसी प्रकार की कोई त्रुटि या कपट तो नहीं है। अत: प्रस्तुत अध्याय में व्यावसायिक संगठन के विभिन्न प्रारूपों में अंकेक्षक की नियुक्ति, पारिश्रमिक, अधिकार और कर्तव्य आदि के विषय में अलग-अलग वर्णन किया जा रहा है।

■ 2. एकाकी व्यापार (Sole Trade)

एकाकी व्यापार के लिए कोई विशेष विधान नहीं होता है। अत: ऐसे व्यापार के लिए हिसाब-किताब का अंकेक्षण कराना अनिवार्य नहीं है। वैधानिक सीमाओं के न होने से अंकेक्षक की नियुक्ति, पारिश्रमिक, अधिकार तथा कर्तव्य संबंधी सभी बातें एकाकी व्यापारी की इच्छा पर निर्भर हैं। वह स्वयं यह तय करता है कि उसे अपनी संस्था के हिसाब-किताब की जांच अंकेक्षक से करवानी है या नहीं।

● 2.1 अंकेक्षक की नियुक्ति (Appointment of Auditor)

यदि एकाकी व्यापारी अपने खातों का अंकेक्षण करने का निर्णय करता है, तो अंकेक्षक की नियुक्ति व्यापारी तथा अंकेक्षक के बीच हुए पारस्परिक समझौते के आधार पर होती है। यह समझौता लिखित या मौखिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है, परंतु लिखित समझौता सदैव दोनों के हित में होता है। जिससे कि बाद में कोई विवाद उत्पन्न न हो। यदि लिखित समझौते के द्वारा उसकी नियुक्ति नहीं की गई है, तो भी उसको चाहिए कि अपने कार्य-क्षेत्र के संबंध में व्यापारी से पत्र-व्यवहार करके उसकी पुष्टि करा लें। अत: एकाकी व्यापार में अंकेक्षक की नियुक्ति के संबंध में निम्नलिखित दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं:

(i) नियुक्ति का समझौता और (ii) काम करने की सीमा का लिखित आदेश प्राप्त करना।

पारिश्रमिक (Remuneration): जिस प्रकार से एकाकी व्यापारी के लिए अंकेक्षक की नियुक्ति के संबध में कोई वैधानिक आदेश नहीं है, उसी प्रकार उसके पारिश्रमिक के लिए कोई वैधानिक सीमा अथवा बंधन नहीं है। अंकेक्षक का पारिश्रमिक भी एकाकी व्यापारी तथा अंकेक्षक के बीच आपसी समझौते द्वारा तय किया जाता है।

अधिकार (Rights): अंकेक्षक के अधिकार के संबंध में कोई भी वैधानिक नियम नहीं हैं, किंतु फिर भी साधारणत: उसके निम्नलिखित अधिकार होते हैं:

(i) अंकेक्षक को एकाकी व्यापार में प्रयोग होने वाली सभी पुस्तकों व खातों की जांच करने का अधिकार है।

(ii) वह अपने नियोक्ता से अपने कार्य के लिए आवश्यक सूचनाएं एवं स्पष्टीकरण माँग सकता है और शंकाओं का समाधान कर सकता है।

(iii) अंकेक्षक को समझौते के अनुसार नियत पारिश्रमिक प्राप्त करने का भी अधिकार है।

(iv) अंकेक्षण कार्य करते समय यदि उसके सम्मुख कुछ शंकाएं व छल-कपट आते हैं, तो वह अपनी रिपोर्ट में उनका स्पष्ट उल्लेख कर सकता है।

कर्तव्य (Duties): एकाकी व्यापार के लिए वैधानिक रूप से तो अंकेक्षक के कोई कर्तव्य नहीं दिए गए हैं, परंतु नैतिक रूप से उसके निम्नलिखित कर्तव्य हैं:

(1) अंकेक्षक को व्यापार की जांच प्रारम्भ करने से पूर्व अपने अधिकारों तथा कार्य-क्षेत्र की सीमा को भली-भांति समझ लेना चाहिए।

(2) अंकेक्षक को एकल व्यापारी के हिसाब-किताब की परिश्रम, ईमानदारी और पूरी योग्यता से जांच करनी चाहिए।

(3) जांच समाप्त होने पर अंकेक्षक को अपने द्वारा हस्ताक्षरित व्यापार से संबंधित एक रिपोर्ट देनी चाहिए।

(4) कभी-कभी अंकेक्षक से यह भी पूछा जाता है कि वह पुस्तपालन की पद्धति के विषय में अपने सुझाव दें। यदि एकल व्यापारी व्यापार के संबंध में कोई सुझाव माँगता है, तो अंकेक्षक को वह भी देना चाहिए। ऐसी सेवा अंकेक्षक के साधारण कर्तव्य के अतिरिक्त होगी।

हटाया जाना (Removal): एकाकी व्यापार के संबंध में कोई वैधानिक नियम न होने के कारण अंकेक्षक का हटाया जाना पूर्णतया नियोक्ता की इच्छा अथवा नियोक्ता के साथ हुए समझौते पर निर्भर है।

■ 3. साझेदारी (Partnership)

साझेदारी फर्म का संचालन भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 के अंतर्गत किया जाता है। अधिनियम के अनुसार साझेदारी फर्म का अंकेक्षण कराना अनिवार्य नहीं है किंतु फिर भी अंकेक्षण के महत्त्व और लाभों को देखते हुए संस्थाएं प्राय: अंकेक्षण कराती हैं। कई फर्में, स्थापना से पहले, साझेदारी संलेख में यह व्यवस्था कर लेती है कि खातों का अंकेक्षण अंकेक्षक द्वारा कराया जायेगा। यहां पर यह बताना आवश्यक है कि यदि कोई फर्म अपने खातों का अंकेक्षण कराना चाहती है तो संयुक्त पूँजी कंपनी की तरह उसे किसी योग्यता-प्राप्त अंकेक्षक को नियुक्त करना आवश्यक नहीं है। कंपनी अधिनियम की भांति भारतीय साझेदारी अधिनियम में अंकेक्षक की योग्यताओं, कर्तव्यों, अधिकारों एवं दायित्वों को निर्धारित नहीं किया गया है। अत: अंकेक्षक की शक्तियां, कर्तव्य आदि के निर्धारित करने का काम व्यक्तिगत फर्मों पर छोड़ दिया जाता है। प्रत्येक मामले का निर्णय फर्म और अंकेक्षक के मध्य हुए अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार किया जाता है। परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि एक फर्म के खातों को अंकेक्षण कराने का मुख्य उद्देश्य वहीं होता है जो संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों के खातों के अंकेक्षण का होता है अर्थात कपट एवं गलतियों का पता लगाना, कपट एवं गलतियों का रोकना एवं लाभ-हानि खाते तथा चिट्ठे की सत्यता प्रमाणित करना।

नियुक्ति (Appointment): साझेदारी संस्था के अंकेक्षण के संबंध में कोई कानून नहीं है। परंतु यदि **साझेदारी संलेख** (Partnership Deed) में फर्म के हिसाब-किताब का अंकेक्षण कराने का प्रावधान है, तो अंकेक्षक की नियुक्ति की जा सकती है। नियुक्ति की शर्तें तथा कार्य-क्षेत्र साझेदारी फर्म तथा अंकेक्षक के बीच हुए समझौते द्वारा निश्चित किया जाएगा।

पारिश्रमिक (Remuneration): अंकेक्षक के पारिश्रमिक का निर्धारण प्राय: साझेदारों द्वारा ही किया जाता है। कभी-कभी इस संबंध में साझेदारी संलेख में कुछ उल्लेख होता है। यदि साझेदारी **संलेख** (Partnership Deed) में अंकेक्षक के पारिश्रमिक के संबंध में कोई निर्देश है, तो उन निर्देशों को ध्यान में रखकर फर्म तथा अंकेक्षक द्वारा आपसी समझौते से पारिश्रमिक तय किया जा सकता है।

अधिकार (Rights): साझेदारी संस्था में अंकेक्षक के निम्नलिखित अधिकार है:

(i) अंकेक्षक को अपना कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए साझेदारी संलेख को देखने का अधिकार है।

(ii) उसे फर्म की व्यापार संबंधी समस्त हिसाब-किताब की पुस्तकें देखने का अधिकार है।

वह कंपनी का अधिकारी है और नहीं भी। यह ...

4.6 अंकेक्षक के अधिकार अथवा शक्तियां (Rights or Powers of Auditor)

अंकेक्षक एक स्वतंत्र व्यक्ति है जो अंकेक्षण का कार्य विभिन्न वर्गों के हितों का ध्यान रखते हुए करता है। अतः अंकेक्षक को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने हेतु कुछ अधिकारों की आवश्यकता है। एक अंकेक्षक को अपना कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न करने हेतु उसे कंपनी अधिनियम तथा चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट्स अधिनियम के अंतर्गत कुछ अधिकार दिये गये हैं जो कि निम्नलिखित हैं:

(1) कंपनी की पुस्तकों, खातों और प्रमाणकों तक पहुंचने का अधिकार (Right of Access to Books, Accounts and Vouchers of the Company): अंकेक्षक को कंपनी अधिनियम 2013, की धारा 143 के अनुसार यह अधिकार है कि वह कंपनी की पुस्तकों, खातों और प्रमाणकों को किसी भी समय देख सकता है, पुस्तकें चाहे कंपनी के मुख्य कार्यालय में रखी हों या अन्य स्थान पर।

कंपनी की पुस्तकों से अभिप्राय उन पुस्तकों से है जो कि कंपनी में रखी गई हैं अथवा वैधानिक रूप से जिनका रखा जाना अनिवार्य है। 'किसी भी समय' से अभिप्राय कंपनी के कार्य के समय से होता है। सैद्धांतिक रूप में अंकेक्षक बिना किसी पूर्व सूचना के किसी भी समय (कार्यालय समय में) अंकेक्षण कार्य के लिये उपस्थित हो सकता है किंतु व्यवहार में अंकेक्षक एक पूर्व निश्चित तिथि पर ही अंकेक्षण कार्य के लिए उपस्थित होता है। आकस्मिक जांच की तभी आवश्यकता

पड़ती है जब उसे रोकड़ का सत्यापन करना हो या अंकेक्षक को किसी कपट अथवा अनियमितताओं की जांच संदेहयुक्त परिस्थितियों में करनी हो।

यदि किसी कारणवश संचालकगण अंकेक्षकों को पुस्तकें उपलब्ध कराने पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं तो ऐसी स्थिति में न्यायालय अंकेक्षकों को पुस्तकें उपलब्ध कराने का आदेश तो नहीं दे सकता परंतु इस संबंध में सदस्यों की राय जानने हेतु साधारण सभा बुलाने के लिए निर्देश अवश्य दे सकता है। [**कफ बनाम लन्दन एण्ड काउन्टी लैण्ड एण्ड बिल्डिंग कंपनी** (Cuff vs. London and County Land and Building Company)]

(2) **आवश्यक सूचनाएं एवं स्पष्टीकरण प्राप्त करने का अधिकार** (Right to receive the necessary informations and explanations) कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 143 एवं 146 के अनुसार अपने कार्य के निष्पादन के लिए अंकेक्षक को कंपनी के संचालकों और अधिकारियों से आवश्यक सूचनाएं तथा स्पष्टीकरण प्राप्त करने का अधिकार है। कौन-सी सूचना तथा किस प्रकार का स्पष्टीकरण आवश्यक होगा, यह निर्णय करने का अधिकार भी स्वयं अंकेक्षक को ही होता है। यदि कोई सूचना या स्पष्टीकरण इस आधार पर प्रदान न किया जाए कि संचालकों की सम्मति में वह अंकेक्षक का कर्तव्य पूरा करने के लिए आवश्यक नहीं है अथवा सूचना या स्पष्टीकरण का संतोषप्रद उत्तर न मिलने पर वह इसका उल्लेख अपनी रिपोर्ट में करने का अधिकारी है।

(3) **तैयार अन्तिम खाते प्राप्त करने का अधिकार** (Right to Receive Prepared Final Accounts): अंकेक्षक को यह अधिकार है कि वह कंपनी के प्रबंधकों से लाभ-हानि खाता एवं चिट्ठा तैयार करवाकर प्राप्त करे। अन्तिम खाते बनाने का कार्य अंकेक्षक का नहीं है वह तो इनकी सत्यता एवं औचित्य के संबंध में रिपोर्ट देता है। यदि प्रबन्धक अन्तिम खाते तैयार करने हेतु अंकेक्षक से अनुरोध करते हैं तो वह अंकेक्षक के रूप में कार्य नही करता है बल्कि लेखापालक की हैसियत से कार्य करता है। इसके लिए अंकेक्षक को पारिश्रमिक भी अलग से ही दिया जाता है।

(4) **शाखा कार्यालयों के निरीक्षण का अधिकार** (Right to Visit the Branch Offices): कंपनी अधिनियम की धारा 143 के अनुसार यदि किसी कंपनी की शाखा है और उस शाखा का अंकेक्षण कंपनी अंकेक्षक ने नहीं किया है बल्कि किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किया गया है तो ऐसी परिस्थिति में अंकेक्षक को शाखा के खातों का निरीक्षण करने का अधिकार होगा। इन अधिकारों के अंतर्गत वह विस्तृत रूप से कंपनी के शाखा कार्यालय में शाखा की पुस्तकों, प्रमाणकों एवं खातों को देख सकता है। यदि कंपनी की शाखा विदेश में स्थित है तो उसके खातों के निरीक्षण हेतु उसे वहां जाने का अधिकार नहीं है। इस स्थिति में उसका अधिकार ऐसी विदेशी शाखा द्वारा अपने **प्रधान कार्यालय** (Head Office) को पुस्तकों एवं खातों की प्रेषित की गई प्रतिलिपियों की जांच तक सीमित होगा।

(5) **साधारण सभा की सूचना प्राप्त करने व उनमें जाने का अधिकार** (Right to Receive Notice of and Attend General Meeting): कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 146 के अनुसार अंकेक्षक को उन सभी सूचनाओं (नोटिस) को प्राप्त करने का अधिकार है जो कि कंपनी की साधारण सभा हेतु निर्गमित की गयी है। अंकेक्षक को इन सभाओं में जाने का भी अधिकार है भले ही किसी सभा में लेखों पर चर्चा की जानी है अथवा नहीं।

(6) **साधारण सभा में बोलने का अधिकार** (Right to Make a Statement in the General Meeting): कंपनी अधिनियम की धारा 146 के अनुसार अंकेक्षक को लेखों के संबंध में तथा अपनी रिपोर्ट में दी गई मर्यादाओं के संबंध में स्पष्टीकरण देने हेतु साधारण सभा में बोलने का अधिकार है। इस अधिकार के अनुसार अंकेक्षक सदस्यों की शंकाओं का समाधान कर सकता है एवं उनके द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दे सकता है परंतु वह सभा में पूछे गए सभी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। अंकेक्षक को संबंधित कार्यों के अतिरिक्त अन्य बातों पर बोलने का अधिकार नहीं होता।

साधारणतया अंकेक्षक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक वार्षिक साधारण सभा में उपस्थित हों, परंतु निम्नलिखित परिस्थितियों में अंकेक्षक को साधारण सभा में उपस्थित अवश्य होना चाहिए:

(i) जब उसे संदेह हो कि कंपनी के संचालक किसी आर्थिक समस्या को छिपाना चाहते हैं।

■ 5. अंकेक्षक का दायित्व (Liabilities of an Auditor)

दायित्व का संबंध जिम्मेदारी से होता है तथा जिम्मेदारी का सृजन अधिकार से होता है। यदि कोई भी अंकेक्षक अपने कर्तव्यों का निष्पादन सतर्कता एवं चतुराई से नहीं करता है तो उसे उत्तरदायी बनाया जा सकता है। यदि उसकी लापरवाही के परिणामस्वरूप नियोक्ता को कोई हानि उठानी पड़ती है तो अंकेक्षक को उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है तथा न्यायालय द्वारा उसे उस हानि की क्षतिपूर्ति के लिए विवश किया जा सकता है। अंकेक्षक के दायित्व की सीमा निर्धारण करना तो संभव नहीं है, किंतु प्रत्येक दशा में उसके कुछ विशेष दायित्व होते हैं जिनके लिए वह उत्तरदायी होता है।

(क) एकाकी व्यापार में अंकेक्षक का दायित्व (Liabilities of Auditor in Case of Sole Proprietorship): एकाकी व्यापार में अंकेक्षक की नियुक्ति एक अनुबन्ध के अधीन की जाती है। अत: उसका दायित्व भी उस अनुबन्ध के द्वारा ही निश्चित होता है। यदि वह अनुबन्ध में दिए हुए कार्यों को उचित रूप से नहीं करता है या लापरवाही के साथ करता है, तो वह नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा। साथ ही साथ उसे यह भी नही भूलना चाहिए कि उसके द्वारा दिए गए प्रमाण-पत्र को देखकर ही उस व्यापारी के साथ अनेक व्यक्ति अपना संबंध स्थापित करते हैं, अत: उन बाहरी व्यक्तियों के प्रति उसे नैतिक रूप से अपना कर्तव्य निभाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। वास्तव में एक अंकेक्षक के दायित्वों की सीमा बहुत विस्तृत है और यह मुख्यत: व्यापार की स्थिति और अनुबन्ध में दिए हुए कार्य-क्षेत्र के ऊपर निर्भर होती है, अत: अंकेक्षक को अपनी नियुक्ति के समय चाहिए कि वह अपने कार्यक्षेत्र को नियोक्ता से लिखित रूप में ले ले।

(ख) साझेदारी संस्था में अंकेक्षक का दायित्व (Liabilities of Auditor in Partnership Firm): साझेदारी संस्था में भी अंकेक्षक की नियुक्ति एक अनुबन्ध के अधीन ही होती है, अत: उसका दायित्व उसी प्रकार निश्चित किया जाएगा जिस प्रकार कि एकाकी व्यापार में निश्चित किया जाता है। साथ ही साथ यदि साझेदारी संलेख में अंकेक्षण के संबंध में यदि कोई विशेष नियम व व्यवस्थाएं दी गई हैं, तो अंकेक्षक उनके लिए भी उत्तरदायी होगा।

(ग) कंपनी में अंकेक्षक का दायित्व (Liabilities of Auditor in a Company): एक सीमित दायित्व वाली कंपनी के अंकेक्षक की स्थिति एकाकी व्यापार अथवा साझेदारी संस्था के अंकेक्षक से भिन्न होती है। कंपनी के अंकेक्षक की नियुक्ति कंपनी अधिनियम, 2013 की व्यवस्थाओं के अनुसार की जाती है। अत: इसके दायित्वों का निर्धारण अधिनियम की व्यवस्थाओं के ही आधार पर किया जाता है। कंपनी अंकेक्षक के दायित्वों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है:

I. दीवानी दायित्व (Civil Liability)

(क) लापरवाही के लिए दायित्व (Liability for Negligence)।

(ख) कर्तव्य भंग के लिए दायित्व (Liability for Misfeasance)।

(ग) तीसरे पक्षों के प्रति दायित्व (Liability towards Third Parties)।

(घ) कंपनी अधिनियम के अंतर्गत दायित्व (Liability under Company Act)।

II. सापराध कार्यों के लिए दायित्व (Criminal Liability)

I. दीवानी दायित्व (Civil Liability): दीवानी दायित्व से आशय ऐसे दायित्व से है जिसमें अंकेक्षक को दोषी ठहराये जाने पर अंकेक्षक को हर्जाना देना पड़ता है। न्यायालय अंकेक्षक को जुर्माना या कैद की सजा नहीं देता है। ऐसे दायित्व निम्नलिखित हो सकते हैं:

(क) लापरवाही के लिए दायित्व (Liability for Negligence): अंकेक्षक से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपना कार्य पूर्ण सावधानी, चतुराई, कुशलता एवं परिश्रम से करेगा तथा नियोक्ता के साथ किये गये अनुबन्ध व कंपनी विधान का पालन करेगा। अत: यह स्पष्ट है कि इन बातों का उल्लंघन करने पर अंकेक्षक को दोषी ठहराया जा

ह्रास, आयोजन एवं संचय
(Depreciation, Provisions and Reserves)

1. ह्रास (Depreciation)

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition): प्रत्येक व्यावसायिक संस्था अर्थात् व्यापार या उद्योग में विभिन्न प्रकार की स्थायी संपत्तियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं, जैसे- भवन, प्लांट, मशीन, फर्नीचर आदि। जैसे-जैसे इन संपत्तियों का प्रयोग होता जाता है, इनके मूल्य में निरन्तर धीरे-धीरे एक प्रकार की कमी आती रहती है। इसके साथ ही इनकी आयु भी कम होती चली जाती है। एक समय ऐसा भी आता है कि जब ये संपत्तियाँ बिल्कुल बेकार हो जाती हैं तथा इनके स्थान पर दूसरी संपत्तियाँ **प्रतिस्थापित** (Replace) करनी पड़ती हैं। संपत्ति के मूल्य में इस प्रकार स्थायी कमी आने को ही **ह्रास** (Depreciation) कहते हैं। इस प्रकार ह्रास से आशय लगातार प्रयोग में आने, समय व्यतीत होने, टूट-फूट होने, मूल्य में परिवर्तन होने, अप्रचलित होने अथवा अन्य कारणों से किसी स्थायी संपत्ति के मूल्य में होने वाली कमी से है। कई बार यह तर्क दिया जाता है कि कभी-कभी किसी स्थायी संपत्ति का मूल्य समय के बीतने से (भले ही संपत्ति का प्रयोग किया गया हो या नहीं) बढ़ जाता है, जैसा कि मुद्रा **प्रसार** (Inflation) की स्थिति में होता है। इसी प्रकार कभी-कभी स्थायी संपत्ति का मूल्य घटता रहता है, भले ही इसका प्रयोग किया गया हो या नहीं, हालांकि इस प्रकार की कमी अल्प मात्रा में होती है। विभिन्न विद्वानों ने ह्रास की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। इनमें से कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

(1) **कार्टर** के शब्दों में, ''एक संपत्ति के मूल्य में किसी भी कारण से धीरे-धीरे एवं स्थायी रूप से होने वाली कमी को ह्रास कहते हैं।'' (Depreciation is the gradual and permanent decrease in the value of the assets from any cause.'' Carter.)

(2) **हैराल्ड जे. व्हैल्डन** के अनुसार, ''**भूमि, प्लांट, मशीनरी तथा अन्य संपत्तियों में लगाई हुई पूँजी के मूल्य में, इन संपत्तियों के जीवनकाल में सामान्य एवं अवश्य होने वाली हानि के कारण आने वाली कमी को ह्रास कहते हैं।**'' (Depreciation represents the loss in value of the capital sunk in buildings, plant, machinery and other equipment; due to normal and inevitable deterioration during the life of these assets.'' **Harold J. Whelden)**

(3) **जे. आर. बॉटलीबॉय** के अनुसार, ''**यह एक साधारण जानकारी की बात है कि सभी स्थायी संपत्तियाँ; जैसे- प्लांट, मशीन फिक्चर्स, औजार, भवन, वैगन्स, फर्नीचर आदि जैसे-जैसे पुरानी होती जाती हैं, वैसे-वैसे उनके मूल्य में कमी होती जाती है और व्यापार में लगातार प्रयोग होते रहने से वे बेकार हो जाती है।**'' (It is a matter of common knowledge that all fixed assets, such as plant, machines, tools, buildings, wagons, furniture, fixtures, etc. gradually diminish in value as they get older and become worn out by constant use in the business. J.R.Baltiboi)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर ह्रास की एक व्यापक परिभाषा निम्न प्रकार हो सकती है

किसी भी स्थायी संपत्ति के लगातार प्रयोग, टूट-फूट, समय व्यतीत होने, नये अविष्कार (अप्रचलन) अथवा अन्य किसी कारण से उसके मूल्य में निरन्तर एवं धीरे-धीरे होने वाली कमी को ह्रास कहते हैं। (The gradual and continuous decrease in the value of a fixed asset due to continuous use, wear and tear, passage of time, new inventions (obsolescence) or any other reason is called depreciation)

2. आयोजन (Provisions)

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition): साधारणतया आयोजन का आशय भावी हानि तथा दायित्व के लिए की गई व्यवस्था से है। अतः आयोजन वे राशियाँ हैं जो लाभ अथवा अन्य बचत या **आगम प्राप्ति** (Revenue Receipt) में से निकालकर निश्चित और विशिष्ट आवश्यकताओं या सम्भाव्य हानियों को पूरा करने के लिए सुरक्षित रखी जाती है।

भारतीय कम्पनी अधिनियम के अनुसार, ''आयोजन का आशय उस धनराशि से है जो संपत्तियों के मूल्यों में कमी आने, नवीनीकरण अथवा ह्रास का आयोजन करने के लिए रोक ली गई हो अथवा अपलिखित की गई हो या ऐसे किसी ज्ञात दायित्व की पूर्ति करने के लिए रख ली गई हो जिसकी राशि पर्याप्त शुद्धता के साथ निर्धारित नहीं की जा सकती हो।''

('The expression Provision' shall mean any amount written off or retained by way of providing for depreciation, renewals or diminution in value of assets or retained by way of providing for any known liability of which the amount cannot be determined with substantial accuracy.'' - **Indian Companies Act**)

यदि किसी ज्ञात दायित्व का सही अनुमान लगाया जा सकता है तो वह दायित्व ही है न कि आयोजन। अतः आयोजन सदैव लाभ पर प्रभार होते हैं। उदाहरण के लिए, देनदारों पर डूबत ऋण व छूट के लिए आयोजन, मूल्य ह्रास के लिए आयोजन तथा संदिग्ध दायित्व के लिए आयोजन इत्यादि।

- **2.1 विशेषताएँ (Characterisitics)**

आयोजन की दो प्रमुख विशेषताएं होती हैं जो निम्नलिखित हैं:

(i) आयोजन निश्चित तौर पर किया जाता है। संस्था में लाभ हो या हानि, आयोजन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(ii) आयोजन का **सृजन** (Creation) किसी विशेष उद्देश्य से किया जाता है तथा इसका प्रयोग भी उसी के सन्दर्भ में होता है।

- **2.2 उद्देश्य (Objects)**

इसके उद्देश्यों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

(1) भावी (सम्भावित) हानियों के लिए आयोजन (Provision for future Losses): प्रत्येक संस्था सभी ज्ञात हानियों को लाभ-हानि खाते के नाम पक्ष में लिख देती है लेकिन कुछ हानियाँ अज्ञात होती हैं जिनकी सही धनराशि का अनुमान लगाना अत्यन्त ही कठिन होता है। ऐसी हानियों को भावी या सम्भावित हानियाँ कहते हैं। ऐसी हानियों की अनुमानित राशि आयोजन के रूप में लाभ-हानि खाते के नाम लिखकर सम्बन्धित आयोजन खाते में जमा कर दी जाती हैं तथा इस राशि को चिट्ठे में सम्बन्धित संपत्ति के मूल्य में से घटाकर दिखाया जाता है। ये आयोजन निम्नलिखित है:

(i) डूबत एवं संदिग्ध ऋणों के लिए आयोजन,

(ii) ह्रास, मरम्मत एवं नवीनीकरण के लिए आयोजन,

(iii) देनदारों पर छूट के लिए आयोजन,

(iv) विनियोगों के मूल्य में कमी के लिए आयोजन,

(v) पशुधन के लिये विशेष आयोजन,

(vi) प्राकृतिक प्रकोप के कारण अबीमित संपत्ति को होने वाली हानि के लिए आयोजन।

(2) सम्भाव्य दायित्वों के लिए आयोजन (Provision for Contingent Liabilities): कुछ ऐसे दायित्व होते है जिनके बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु व्यापारिक दृष्टि से इनके लिए आयोजन किया जाना चाहिए। इसके अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं:

(i) भुनाये हुए प्राप्य बिलों के लिए आयोजन,

(ii) कर-दायित्व के लिए आयोजन,

(iii) व्यवसाय में चल रहे किसी मुकद्दमें के दायित्व के लिए आयोजन,

(iv) कर्मचारियों के पेंशन, ग्रेच्युटी, क्षतिपूर्ति आदि के लिए आयोजन।

- **आयोजन एवं अंकेक्षक (Provision and Auditor)**

अंकेक्षक का यह कर्तव्य है कि वह सभी सम्भावित हानियों तथा दायित्वों के लिए किए गए आयोजनों की विस्तृत एवं गहराई से जाँच करे तथा देखे कि कोई सम्भावित हानि अथवा दायित्व आयोजित करने से छूट तो नहीं गया है। अंकेक्षण करने के क्रम में उसे

सम्बन्धित अधिकारियों एवं संचालकों आदि से आवश्यकतानुसार स्पष्टीकरण ले लेना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार विशेषज्ञों की राय भी लेनी चाहिए। यद्यपि एक अंकेक्षक कोई विशेषज्ञ नहीं होता किन्तु उसे अपने विवेक, बुद्धि एवं चातुर्य से आयोजनों की जाँच करनी चाहिए। यदि अंकेक्षक समझता है कि आयोजन अपर्याप्त है तो उसे अपनी रिपोर्ट में इसका उल्लेख कर देना चाहिए।

■ 3. संचय (Reserves)

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition): लाभ का वह भाग जिसे अंशधारियों में वितरित नहीं किया गया है तथा संस्था की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ (मजबूत) करने एवं कार्यशील पूँजी बढ़ाने के उद्देश्य से संस्था में रोककर रखा गया है, संचय है। इसका निर्माण किसी अधिनियम के अंतर्गत अनिवार्य नहीं है वरन् यह पूर्णरूप से ऐच्छिक है।

भारतीय कम्पनी अधिनियम में संचय की कोई स्पष्ट परिभाषा तो नहीं दी गयी है फिर भी ''**संचय में वह राशि सम्मिलित नहीं है जो संपत्ति के ह्रास, नवीनीकरण अथवा किसी ज्ञात दायित्व के लिए प्रावधान अथवा आयोजन न हो।**'' (The expression 'reserve' shall not include any amount written off or retained by way of providing for depreciation, renewals or diminution in value of assets or retained by way of providing for any known liability.

पिकिल्स के अनुसार, ''**संचय से तात्पर्य ऐसी राशि से है जो लाभ अथवा अन्य बचत में से निकालकर अलग रख दी जाती है और जिसका उद्देश्य चिट्ठे के दिन किसी ज्ञात दायित्व या संपत्ति के मूल्य में कमी के लिए व्यवस्था करना नहीं है।**'' (Reserve means amount set aside, out of profit and other surpluses which are not designed to meet any liability, contingency, commitment or diminution in value of assets known to exist at the date of the Balance Sheet. Pickles)

● 3.1 संचय के प्रमुख लक्षण (Main Features of Reserves)

उपरोक्त परिभाषाओं से संचय की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती है:

(i) यह सामान्य उद्देश्य के लिए बनाया जाता है।

(ii) यह व्यय अथवा हानि के रूप में नहीं होता है।

(iii) संचय का निर्माण भूत अथवा वर्तमान लाभों में से ही किया जाता है।

(iv) यह लाभों का **नियोजन** (Appropriation) होता है।

(v) संकट के समय लाभांश वितरण हेतु इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(vi) इससे व्यापार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है, साथ ही कार्यशील पूँजी भी बढ़ती है।

(vii) वैधानिक तौर पर इसका **निर्माण** (Creation) अनिवार्य नहीं होता है।

(viii) अंकेक्षक इसकी पर्याप्तता के सम्बन्ध में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।

(ix) संचय विभिन्न प्रकार के होते हैं।

● 3.2 आयोजन एवं संचय में अंतर (Difference between Provision and Reserve)

अंतर का आधार (Basis of Difference)	आयोजन (Provision)	संचय (Reserve)
1. प्रकृति (Nature)	यह लाभ पर प्रभार (Charge) स्वरूप है।	यह लाभ का नियोजन (Appropriation) है।
2. अनिवार्यता (Compulsion)	इसका निर्माण प्रति वर्ष किया जाता है, चाहे लाभ हो या हानि। इस प्रकार यह एक वैधानिक आवश्यकता है।	इसका निर्माण प्रायः ऐच्छिक होता है और वित्तीय दूरदर्शिता (Prudence) पर निर्भर करता है।

3. उद्देश्य (Objects)	इसका उद्देश्य सम्भाव्य दायित्व अथवा हानि की पूर्ति के लिए व्यवस्था करना है।	इसका उद्देश्य कम्पनी की कार्यशील पूंजी में वृद्धि करना तथा उसकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना है।
4. निश्चितता (Certainty)	यह एक ज्ञात दायित्व के लिए बनाया जाता है।	यह किसी अनिश्चित दायित्व के लिए बनाया जाता है।
5. उपयोग (Use)	इसकी राशि लाभांश बाँटने के लिए उपलब्ध नहीं होती।	इसकी राशि लाभांश बांटने के लिए उपलब्ध होती है।
6. निरूपण (Enunciation)	यह चिट्ठे के संपत्ति पक्ष की ओर प्रायः सम्बन्धित संपत्ति में से घटाकर दिखाया जाता है।	यह चिट्ठे में दायित्व पक्ष की ओर 'संचय एवं आधिक्य' (Reserve and Surplus) शीर्षक के अंतर्गत दर्शाया जाता है।
7. निर्धारण (Ascertainment)	इसकी राशि का निर्धारण कठिन है, यद्यपि दायित्व का ज्ञान प्रायः हो जाता है।	इसकी राशि प्रबन्धकीय नीति पर निर्भर करती है।
8. हस्तक्षेप (Interference)	इसमें अंकेक्षक को आयोजन की पर्याप्तता की जाँच करनी होती है।	इसमें अंकेक्षक का कोई हस्तक्षेप नहीं रहता है।
9. उदाहरण (Examples)	स्थायी संपत्तियों के ह्रास के लिए आयोजन, संदिग्ध ऋणों के लिए आयोजन, करों के लिए आयोजन आदि।	सामान्य संचय (General Reserve), लाभांश समकरण संचय (Dividend Equalisation Reserve) आदि।

3.3 संचयों के प्रकार (Types of Reserves)

संचय को निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है:

(1) सामान्य संचय (General Reserve): ऐसा संचय किसी विशेष कार्य के लिए नहीं बनाया जाता। साधारणतः व्यवसाय में जितना लाभ होता है उसे पूरा न बांट कर उस लाभ का कुछ भाग **संचित** (Reserve) कर लिया जाता है जिसे सामान्य/साधारण संचय कहते हैं। इसका निर्माण संचालकों की इच्छा पर निर्भर है। सामान्य संचय प्रायः निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही किया जाता है।

(i) व्यापार की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए,

(ii) किसी अज्ञात **भावी संकट** (Unknown Future Liability) से व्यवसाय की रक्षा करने के लिए।

(iii) व्यापार का विस्तार करने के लिए।

(iv) लाभांश की दर समान रखने के लिए।

इसका उपयोग किसी भी कार्य के लिए किया जा सकता है अतः इसे स्वतंत्र संचय (Free Reserve) भी कहते हैं। इ चिट्ठे के दायित्व पक्ष में अलग से दिखाया जाता है।

(2) विशेष संचय (Specific Reserve): किसी विशेष कार्य की पूर्ति के उद्देश्य से संचित राशि को विशेष संचय कहते हैं जैसे 'भवन निर्माण संचय' अथवा 'ऋणपत्र शोधन संचय'। विशेष संचय का निर्माण प्रतिवर्ष लाभों में से कुछ रा हस्तांतरित करके इस प्रकार किया जाता है जिससे निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के समय आवश्यक धनराशि उपलब्ध सके। ऐसे उद्देश्य विशेष की पूर्ति के बाद यदि धनराशि शेष बचती है तो उसे लाभांश वितरण हेतु प्रयोग किया जा सक है। अन्यथा इस संचय में से लाभांश का वितरण नहीं किया जाता।

विभाजन योग्य लाभ एवं लाभांश
(Divisible Profits and Dividends)

■ 1. लाभ (Profit)

लाभ से आशय (Meaning of Profit): 'लाभ' शब्द का सही-सही अर्थ बताना प्रायः कठिन-सा है, क्योंकि विख्यात विद्वान भी इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में करते है और लेखाकार भी इसके अर्थ से एकमत नहीं हो सके है। अधिनियम के अंतर्गत लाभ की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। अनेक लेखकों एवं अधिकारियों ने लाभ को अपने शब्दों में अलग-अलग परिभाषित किया है। कुछ लेखकों के अनुसार, **''किसी अवधि में आय का व्यय पर आधिक्य ही लाभ कहा जाता है''** ("Profit for a given period may be said to be the excess of income over expenditure") दूसरे लोगों के अनुसार, **''दो अवधियों के बीच संपत्तियों का दायित्वों एवं पूँजी पर आधिक्य ही लाभ कहलाता है।''** ("The excess of assets over liabilities and capital between two dates is called Profit") कुछ विद्वानों ने लाभ की परिभाषा निम्न प्रकार दी है:

(1) **स्पाइसर एवं पैगलर** के शब्दों में, **''लाभ एक निश्चित अवधि में चालू आय का चालू व्यय पर वह आधिक्य है, जो लाभ कमाने में चालू तथा स्थायी संपत्तियों पर होने वाली हानि का समायोजन करने के पश्चात् प्राप्त होता है।''** (''The profit for a given period may be said to be the excess of current income over current expenditure, after making good any loss sustained by fixed or current assets during that period in the process of earning such income.'' **–Spicer and Pegler**)

(2) **फ्लेचार माउल्टन** के अनुसार, **''यदि किसी व्यापार की कुल संपत्तियों की तुलना किन्ही दो विभिन्न तिथियों पर की जाये, तो पूर्व तिथि की तुलना में बाद वाली तिथि पर उनमें जो वृद्धि दिखलाई दे (इन दोनों तिथियों के बीच व्यापार में पूँजी के आने एवं जाने को ध्यान में रखते हुए) उसे उस संस्था का लाभ कहते हैं।''** ('If the total assets of the business of the two dates be compared the increase which they show at the latter date as compared with the earlier date (due allowance of course, being made for any capital introduced into or taken out of the business in the mean while) represents in strictness, the profit of the business during the period in question". **–Fletcher Moulton**)

● 1.1 वास्तविक लाभ का निर्धारण (Ascertainment of Real Profits)

वास्तविक अथवा सही लाभ का निर्धारण संस्था के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। किसी संस्था के लाभ का संबंध केवल उसके मालिकों के लिए ही नहीं अपितु आयकर अधिकारियों, संचालकों, प्रबन्धकों आदि सभी के लिए होता है। एकाकी एवं साझेदारी संस्थाओं में मालिक अपने लाभ का अपनी इच्छानुसार निश्चय कर सकता है। यदि आयकर अधिकारी, आयकर अधिनियम के अनुसार कर-निर्धारण के लिए इनमें कोई त्रुटि देखता है तो वह उचित समायोजन करते हुए कर निर्धारित कर देता है। परन्तु संस्था की पुस्तकों में समायोजन प्रविष्टियाँ नहीं की जाती, क्योंकि मालिक अपने दृष्टीकोण से लाभ निश्चित करते हैं। किन्तु जहाँ तक कम्पनियों का प्रश्न है इनमें अंशधारियों के अतिरिक्त ऋणपत्रधारी, लेनदार एवं कर्मचारी आदि की रूचि भी होती है। जैसे बैंक ऋण देने के लिए, भावी विनियोक्ता विनियोजन करने के लिए, लेनदार अपने ऋण की सुरक्षा के लिए, कर्मचारी बोनस प्राप्त करने के लिए, अंशधारी लाभांश प्राप्त करने के लिए तथा सरकार विभिन्न प्रकार के कर वसूल करने के लिए कम्पनी के अन्तिम खातों में सही एवं वास्तविक लाभ देखना चाहते हैं। अतः

■ 2. विभाज्य अथवा विभाजन योग्य लाभ (Divisible Profits)

'विभाज्य' अथवा 'विभाजन योग्य लाभ' का अर्थ उन लाभों से है जो वैधानिक दृष्टि से अंशधारियों में **लाभांश** (Dividend) के रूप में बांटे जा सकते हैं। विभाजन योग्य लाभ **शुद्ध लाभ** (Net profit) से भिन्न होते हैं। इनके अंतर्गत व्यापारिक लाभ, पूँजीगत लाभ, चालू वर्ष के लाभ या पिछले अवितरित लाभ सम्मिलित होते हैं।

कुछ विद्वान न्यायधीशों के निर्णय के आधार पर विभाजन योग्य लाभ का आशय निम्न है:

(i) 'लाभ एवं विभाजन योग्य लाभ में अंतर भली-भांति समझ लेना चाहिए, सभी लाभ बाँटने योग्य नहीं होते। केवल वही लाभ जो अंशधारियों में कानूनी दृष्टि से बाँटे जा सकते हैं, विभाजन योग्य लाभ कहलाते हैं।' **(स्टीवर्ट बनाम शशालाइट लिमिटेड, 1936)**

(ii) ''लाभांश के लिए उपलब्ध लाभों से आशय उन लाभों से है जो लाभ **संचय** (Reserve) तथा प्रबन्धकों द्वारा अन्य खातों में हस्तांतरण करने के बाद बच जाते हैं।'' **(इन री व्यूनसआयर्स ग्रेट सदर्न कम्पनी लि.)**

(iii) ''लाभांश के लिए प्राप्त लाभ से आशय उस शुद्ध लाभ से है जो संचालकों द्वारा विधिवत् की गयी कटौतियों के बाद शेष रहता है।'' **[फिशर बनाम ब्लैक एण्ड व्हाइट पब्लिशिंग कम्पनी (1901)]**

एक कम्पनी के कुल शुद्ध लाभ का वितरण लाभांश के रुप में किया जाए यह आवश्यक नहीं है। यह संचालकों की इच्छा पर निर्भर होता है कि वे शुद्ध लाभ के एक भाग को विभिन्न **संचतियों** (reserves) **में हस्तांतरित करने के पश्चात् शेष** भाग को अंशधारियों के मध्य लाभांश के रूप में बांटने का सुझाव प्रस्तुत करें अथवा संपूर्ण लाभ को **आगे** (Carry forward) ले जायें या लाभांश बांटने का निर्णय लें।

कम्पनी के 'कुल लाभ' '**विभाज्य लाभ**' नहीं होते। केवल वही लाभ विभाज्य लाभ कहलाते हैं जो वैधानिक रूप में अंशधारियों के मध्य बांटे जा सकें। (All profits are not divisible. Only those profits which can be legally distributed amongst the share holders are divisible profits)

- **विभाजन योग्य लाभ संबंधी कानूनी प्रावधान (Legal Provisions regarding Divisible Profits)**

(1) वैधानिक नियम (Statutory Provisions): कम्पनी अधिनियम 2013 ने विभाजन योग्य लाभ के संबंध में स्थिति प्रायः स्पष्ट कर दी है, जो निम्न प्रकार है:

(i) **ह्रास घटाने के बाद वितरण** (Distribution after deducting Depreciation): भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 123 के अनुसार एक कम्पनी निम्नलिखित साधनों में से किसी वर्ष के लिए लाभांश का वितरण कर सकती है:

(i) उसी वर्ष के लाभों में से।

(ii) उस वर्ष के पूर्व के लाभों में से।

(iii) उपयुक्त (i) व (ii) दोनों के लाभों के योग से।

(iv) लाभांश के वितरण के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा अथवा राज्य सरकार द्वारा दी गई गारंटी के अंतर्गत प्राप्त राशियों में से।

धारा 123 के अनुसार उपरोक्त साधनों में से प्रथम तीन (i, ii, iii) में **चालू ह्रास** (Current Depreciation) की **बकाया राशि** (Arrears of Depreciation) तथा **पिछली हानियों** (Previous Losses) के घटाने के बाद ही शेष राशि को लाभांश के रूप में बांटा जा सकता है।

यदि केंद्रीय सरकार उचित समझे तो किसी कम्पनी को ह्रास का आयोजन किए बिना लाभांश घोषित व वितरित करने की आज्ञा दे सकती है।

(2) संचयों में हस्तांतरण (Transfer to Reserves): लाभांश तब तक घोषित या भुगतान नहीं किया जा सकता जब तक कम्पनी के लाभों का एक **निर्धारित प्रतिशत** (Prescribed Percentage) संचितियों (Reserves) में हस्तांतरित न कर दिया जाए। यह एक अनिवार्य संचिति होगी।

(3) लाभांश का भुगतान केवल नकद में करना (Payment of Dividend Only in Cash): कम्पनी अधिनियम की धारा 205(3) के अनुसार लाभांश का भुगतान केवल नकदी में ही किया जाएगा। निम्न परिस्थितियाँ इसके अपवाद हैं:

(क) लाभों व कोषों का पूँजीकरण करके इसका प्रयोग **बोनस अंशों** (Bonus Shares) के निर्गमन के लिए करना।

(ख) कम्पनी के सदस्यों के अदत्त अंशों का भुगतान करना।

(4) पूँजी में से लाभांश का भुगतान नहीं (No Payment of Dividend out of Capital): लाभांश का भुगतान केवल लाभों में से ही किया जा सकता है, पूँजी में से नहीं। यदि कम्पनी के अंतर्नियमों में पूँजी से लाभांश बांटने का अधिकार दिया गया हो तो भी पूँजी में से लाभांश नहीं बांटा जाएगा, क्योंकि इस प्रकार की अंतर्नियमों में की गई व्यवस्था **अवैध** (Illegal) होगी।

(5) भुगतान की हुई राशि के अनुपात में लाभांश (Dividend in Proportion to Paid-Up Capital): धारा 51 के अनुसार यदि कम्पनी के कुछ अंशों पर अधिक धन प्रदत्त (paid-up) हो चुका है और कुछ पर कम और कम्पनी के अंतर्नियम आज्ञा दें तो अंशधारियों को लाभांश उनके अंशों पर प्रदत्त राशि के अनुपात में बांटा जा सकता है।

(6) लाभांश का रजिस्टर्ड अंशधारियों को भुगतान (Payment of Dividend to Registered Shareholders): धारा 123 के अनुसार किसी भी अंश के संबंध में केवल निम्न व्यक्तियों को लाभांश दिया जा सकता है:

(क) उस अंश के रजिस्टर्ड अंशधारी को अथवा उसके द्वारा किसी आदेशित व्यक्ति या बैंकर को, अथवा

■ 3. लाभांश (Dividend)

लाभांश विभाजन योग्य लाभों का एक भाग होता है जो अंशधारियों में बाँटा जाता है। दूसरे शब्दों में लाभांश का आशय विभाजन योग्य लाभ के उस भाग से है जो कि अंशधारियों के बीच पूर्व निर्धारित दर से या अन्यथा बाँटा जाता है। कंपनी अधिनियम, 2013 की

धारा 2 (35) के अनुसार, लभांश शब्द से आशय कंपनी के उस विभाजन योग्य शुद्ध लाभ से है जो सभी कटौतियाँ काटने के बाद बचता है तथा जिसे संचालक वैधानिक रूप से बाँट सकते है और इसमें अंतरिम लाभांश भी सम्मिलित है।

कम्पनी को अंशधारियों में लाभांश बाँटने का अधिकार अपने पार्षद सीमानियम तथा पार्षद अंतर्नियम द्वारा प्राप्त होता है तथा लाभांश की घोषणा एवं इसके अंशधारियों में भुगतान की प्रक्रिया का वर्णन प्रायः पार्षद अंतर्नियम में दिया जाता है। लेकिन कंपनी अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नही है जो किसी उपक्रम को अपना समस्त लाभ (Entire Profit) लाभांश के रूप में बाँटने के लिए विवश करे। जहाँ अंतर्नियम में लाभ को लाभांश के रूप में अंशधारियों में बाँटने का प्रावधान नहीं है तो कंपनी अपने लाभों से एक संचय कोष (Reserve Fund) का निर्माण सृजन (create) कर सकती है। इस कोष में सृजित राशि का उपयोग कंपनी भविष्य में लाभांश बाँटने के लिए कर सकती है जब कंपनी ने कोई लाभ नहीं कमाए हैं।

• 3.1 लाभांश का निर्धारण (Determination of Dividend)

लाभांश का निर्धारण कम्पनी के संचालकों द्वारा किया जाता है। इस संबंध में संचालकों को भी पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए, अन्यथा कम्पनी की साख प्राभावित होती है। अतः संचालकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है:

(1) **लाभों की जाँच** (Checking of Profits): लाभों की जाँच सही ढंग से की जानी चाहिए, क्योंकि लाभांश की दर इस पर निर्भर करती है।

(2) **लाभांश की दर का निर्धारण** (Determination of the Rate of Dividend): लाभांश की दर किसी भी परिस्थिति में संचालक मंडल द्वारा निर्धारित दर से अधिक नहीं होनी चाहिए (Clause 85, Table A)। इसके निर्धारण में संचालकों को सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए। लाभांश की दर संस्था की स्थिति के अनुकूल होनी चाहिए।

(3) **तरल संपत्तियों की जाँच** (Verification of Liquid Assets): संचालकों को यह देखना चाहिए कि तरल संपत्तियाँ लाभांश की घोषणा के लिये पर्याप्त हैं या नहीं। पर्याप्त नहीं होने की स्थिति में लाभांश का वितरण नहीं किया जाना चाहिए।

(4) **भावी आवश्यकताओं का अनुमान** (Forcasting of Future Needs): संचालकों को देखना चाहिए कि भविष्य में रोकड़ की क्या आवश्यकता होगी और इसी के आधार पर लाभांश का वितरण करना चाहिए। भविष्य में आर्थिक तंगी की स्थिति उत्पन्न न हो, यह हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(5) **संचयों की पर्याप्तता** (Adequacy of Reserves): यह भी देखना चाहिए कि लाभांश के वितरण के लिये कम्पनी के पास पर्याप्त संचय है या नहीं।

(6) **अधिक लाभ की स्थिति में** (At the time of surplus Profits): यदि किसी वर्ष कम्पनी ने अधिक लाभ कमाया हो, तो उस वर्ष सामान्य लाभांश दर के अतिरिक्त बोनस वितरण करना चाहिए ताकि लाभांश दर में स्थिरता बनी रहे।

(7) **कम्पनी के नियमों का पालन** (To follow the Rules and Regulations of Company): लाभांश की दर निर्धारण करने में कम्पनी के नियमों, परिनियमों का पालन आवश्यक होता है।

(8) **कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं का पालन** (To follow the Provisions of Companies Act): इस संबंध में कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं का भी दृढ़ता से पालन किया जाना चाहिए।

• 3.2 लाभांश की घोषणा और भुगतान के संबंध में वैधानिक प्रावधान (Statutory Provisions regarding Declaration and Payment of Dividend)

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 123 के अनुसार लाभांश की घोषणा एक भुगतान के संबंध में वैधानिक प्रावधान निम्न प्रकार हैं:

1. किसी वित्तीय वर्ष के लिए कोई भी लाभांश किसी कंपनी द्वारा घोषित या भुगतान नहीं किया जाएगा सिवायः

   (अ) उपधारा (2) के प्रावधानों के अनुसार ह्रास (Depreciation) का प्रावधान करने के पश्चात उस वर्ष के लिए आए (Arrived) कंपनी के लाभों में से या उस उपधारा के प्रावधानों के अनुसार ह्रास के लिए प्रावधान करने के

अंकेक्षण रिपोर्ट

(Audit Report)

1. अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

अंकेक्षण की नियुक्ति किसी संस्था के हिसाब-किताब की जांच के लिए की जाती है। हिसाब-किताब की जांच करने के बाद अंकेक्षण अपने द्वारा किए गए कार्यों का सारांश रूप में एक विवरण देता है, जिस पर उसके हस्ताक्षर होते हैं। इस विवरण को ही अंकेक्षण रिपोर्ट कहते हैं।

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 143 के अनुसार, एक अंकेक्षण को अंकेक्षण का कार्य समाप्त करने के बाद कम्पनी के लेखों, लाभ-हानि खाता, आर्थिक चिट्ठा तथा उसमें संलग्न प्रपत्रों के संबंध में अपना प्रतिवेदन (Report) देना होता है, जिसे कम्पनी की साधारण सभा में प्रस्तुत किया जाता है। अतः अंकेक्षण कार्य समाप्ति के पश्चात् अंकेक्षण एक प्रतिवेदन (Reprot) प्रस्तुत करता है, जिसमें वह जांच-कार्य के परिणामों और अपने निष्कर्षों को लिखता है। इसी प्रतिवेदन को अंकेक्षण का प्रतिवेदन या रिपोर्ट कहते हैं। इस प्रकार, अंकेक्षण का प्रतिवेदन प्रत्येक अंकेक्षण की अंतिम उपलब्धि (End Product) होती है। यह वह माध्यम है जिसके आधार पर अंकेक्षण वित्तीय खातों एवं विवरणों के संबंध में अपना विचार प्रकट करता है।

जोसेफ लंकास्टर ने अंकेक्षण रिपोर्ट को परिभाषित करते हुए लिखा है, **''रिपोर्ट इकट्ठे किये हुए और जांचे हुए तथ्यों (Facts) की एक सूची है, जो कि इस प्रकार लिखी जाती है ताकि उन लोगों का जिनके पास उस विषय के पूरे तथ्य नहीं होते हैं स्पष्ट व सही सूचना दे सके।''** (Report is a statement of collected and considered facts, so drawn up as to give clear and concise inormation to persons who are not already in possession of the full facts of the subject matter of the Report.'' Joseph Lancaster)

उपरोक्त परिभाषा से अंकेक्षक रिपोर्ट की निम्नांकित विशेषताएं सामने आती हैं

(1) रिपोर्ट अंकेक्षक द्वारा किये गये जांच-कार्यों का संक्षिप्त-विवरण (Summary) है।

(2) रिपोर्ट, अंकेक्षक के उन निष्कर्षों को भी स्पष्ट करता है, जिन पर जांच-कार्य के उपरांत अंकेक्षण पहुँचता है।

(3) रिपोर्ट में तथ्यों के साथ-साथ अंकेक्षक अपना सुझाव भी देता है, यदि मांगा गया हो।

(4) रिपोर्ट पर अंकेक्षक के हस्ताक्षर होना आवश्यक है।

(5) रिपोर्ट से ठोस एवं संक्षिप्त सूचानाएँ प्राप्त होती हैं।

2. अंकेक्षण रिपोर्ट का महत्त्व (Importance of Audit Report)

अंकेक्षण रिपोर्ट उन सभी व्यक्तियों एवं पक्षों के लिए महत्त्वपूर्ण है जो संस्था से संबंधित है। अंकेक्षण रिपोर्ट संस्था की सही स्थिति का चित्रण करती है। अंकेक्षण रिपोर्ट से लाभान्वित होने वाले मुख्य पक्ष अग्रलिखित है

(1) **विनियोगकर्ता** (Investor): यह मानव प्रकृति है कि वह विनियोग करते समय अपने धन की सुरक्षा तथा अधिकतम आय प्राप्त करना चाहता है। अंकेक्षण रिपोर्ट विनियोगकर्ताओं में विश्वास उत्पन्न करती है तथा इस रिपोर्ट के आधार पर ही विनियोगकर्ता अपना धन किसी संस्था में विनियोग करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

(2) **अंशधारी** (Shareholders): अंशधारी किसी भी कम्पनी के वास्तविक स्वामी (owner) होते है परंतु व्यवसाय के स्थान से वह बहुत दूर-दूर तक बिखरे रहते है। इनकी संख्या भी अधिक होती है जिसके कारण वे कम्पनी के प्रबन्ध में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते। अतः कम्पनी की प्रबन्ध व्यवस्था एवं संचालन अंशधारियों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों अर्थात् संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है। इस प्रकार एक कम्पनी की स्थिति में स्वामित्व एवं प्रबन्ध में अलगाव (separation) होता है। अतः संचालकों द्वारा किए गए कार्यों की सही जानकारी अंशधारियों को अंकेक्षण रिपोर्ट द्वारा ही प्राप्त होती है। अंकेक्षण रिपोर्ट अंशधारियों को कम्पनी में रखे गए बही-खातों की पूर्णता, शुद्धता एवं नियमानुकूलता के संबंध में जानकारी देती है। रिपोर्ट के माध्यम से चिट्ठे में वर्णित मदों तथा लाभ-हानि खाते में दर्शाये गये लाभ-हानि के औचित्य की जानकारी मिलती है। इससे अंशधारियों के हितों की रक्षा होती है। यह रिपोर्ट संचालकों की ईमानदारी व योग्यता भी दर्शाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि अंकेक्षण रिपोर्ट अंशधारियों के लिए महत्वपूर्ण प्रलेख है। इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए कम्पनी विधान के अंतर्गत अंकेक्षण कराना अनिवार्य कर दिया गया है।

(3) **संचालक** (Directors): संचालकों के लिए यह सम्भव नहीं होता कि कम्पनी के समस्त कार्यों का निष्पादन वे स्वयं करें। संचालकों का मुख्य कार्य कम्पनी की नीति का निर्धारण करना होता है, जिसके आधार पर कर्मचारियों द्वारा कार्य किए जाते है। ऐसी स्थिति में संचालक भी यह जानना चाहते है कि कर्मचारियों ने किस सीमा तक नियमानुसार, ईमानदारी तथा कर्तव्यनिष्ठा के साथ कार्य पूरा किया है। यह जानकारी उन्हें अंकेक्षण रिपोर्ट से ही मिलती है।

(4) **लेनदार** (Creditors): किसी भी संस्था के लेनदारों को यह जानने की उत्सुकता रहती है कि संस्था की आर्थिक स्थिति कैसी है? कहीं उनका धन असुरक्षित तो नहीं है? अतः लेनदार संस्था/कम्पनी की आर्थिक स्थिति जानने के लिए अंकेक्षण रिपोर्ट पर निर्भर करते है। अंकेक्षण रिपोर्ट से उन्हें इस बात की जानकारी हो जाती है कि उनका धन सुरक्षित है या नहीं तथा संस्था उसे वापस करने की स्थिति में है या नहीं।

(5) **सरकार** (Government): व्यापार एवं सरकार का सीधा संबंध होता है। देश में व्यापार, उद्योग एवं वाणिज्य की उन्नति का देश की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान होता है। देश में पूंजी का ह्रास, पूंजी का हरण, विनियोग का हतोत्साहित होना कुछ ऐसे तथ्य है जिनमें सरकारी हस्तक्षेप का होना आवश्यक होता है। सरकारी कम्पनियों में सरकार द्वारा भी पूंजी विनियोजित की जाती है। अन्य व्यापार एवं उद्योगों में भी सरकार ऋण एवं आर्थिक सहायता प्रदान करती है। अतः सरकार भी यह जानना चाहती है कि उनका धन सुरक्षित है या नहीं। इसकी जानकारी अंकेक्षण रिपोर्ट से ही प्राप्त होती है।

(6) **कर अधिकारी** (Taxation Officer): विभिन्न कर अधिकारी जैसे आयकर अधिकारी, बिक्रीकर अधिकारी, उत्पादन कर अधिकारी भी अंकेक्षित खातों पर अधिक विश्वास रखते है और बिना अधिक जाँच किए रिपोर्ट के आधार पर ही अपना निर्णय ले लेते है। इससे उन्हें कर-निर्धारण में सुविधा रहती है। क्योंकि कर सरकार की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, अतः सरकार के लिए भी अंकेक्षण रिपोर्ट का कम महत्व नहीं है।

■ 3. अंकेक्षण रिपोर्ट की विषय सामग्री (Contents or Subject-matter of Audit Report)

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 143 के अनुसार एक कम्पनी के सदस्यों को दी जाने वाली रिपोर्ट में अग्रलिखित बातों के संबंध में स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए:

(1) (क) क्या उसकी राय में और जहां तक उसको सूचना है तथा जो स्पष्टीकरण दिये गए है उनके अनुसार खाते अधिनियम द्वारा निर्दिष्ट सूचना को निर्दिष्ट ढंग से प्रकट करते है?

(ख) क्या उसकी राय में चिट्ठा तथा लाभ-हानि वित्तीय वर्ष के लिए कम्पनी की वित्तीय-स्थिति तथा इसके लाभ अथवा हानि का 'सत्य एवं उचित' चित्र प्रस्तुत करते है?

(2) क्या उसने वे सभी सूचनाएं और स्पष्टीकरण प्राप्त कर लिए है जो उसकी जानकारी और विश्वास के अनुसार अंकेक्षण कार्य को पूरा करने के लिये आवश्यक है?

(3) क्या उसकी राय में उचित लेखा-पुस्तके, जहाँ तक उन पुस्तकों की जांच से प्रकट है, अधिनियम द्वारा आवश्यक पद्धति से कम्पनी द्वारा रखी गई है और जिन शाखाओं का उसने निरीक्षण नहीं किया है, उनसे उचित विवरण प्राप्त हो गए है?

(4) क्या कम्पनी अंकेक्षक के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अंकेक्षित शाखा कार्यालय की रिपोर्ट उसे भेज दी गई है तथा उसने अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट तैयार करते समय उसका प्रयोग किस प्रकार किया है?

(5) क्या कम्पनी का लाभ-हानि खाता तथा चिट्ठा उसकी पुस्तकों, लेखों एवं विवरणों के अनुरूप है?

यदि उपर्युक्त किसी भी बात के संबंध में उसे संदेह हो तो कारण सहित इसका उल्लेख करना चाहिए।

(6) क्या उसकी राय में वित्तीय विवरण लेखा मानकों का अनुपालन करते हैं?

(7) क्या कोई संचालक धारा 164 की उपधारा (2) के अधीन संचालक के रूप में नियुक्त होने के अयोग्य है?

(8) क्या कंपनी के पास उचित वित्तीय नियंत्रण प्रणाली है और ऐसे नियंत्रणों का प्रभावशाली प्रचलन है?

(9) वित्तीय व्यवहार अथवा मामला जो कम्पनी के कार्य संचालक पर विपरीत प्रभाव डालते हैं उनके सम्बन्ध में अंकेक्षण के विचार या टिका-टिप्पणी।

(10) केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय वित्तीय रिपोर्टिंग प्राधिकरण से परामर्श करने के पश्चात् साधारण या विशेष आदेश द्वारा यह निर्देश कर सकेगी कि कम्पनियों के ऐसे वर्ग या वर्गों जो आदेश में निर्दिष्ट किए जाएँ के सम्बन्ध में अंकेक्षक की रिपोर्ट में ऐसे विषयों पर जो उसके निर्दिष्ट कर जाएँ, एक कथन भी सम्मिलित किया जायेगा।

(11) **धारा 143** के अनुसार **कम्प्ट्रोलर एवं ऑडीटर जनरल** (Comptroller and Auditor General) को यह अधिकार है कि वह सरकारी कम्पनियों के अंकेक्षकों को समान आदेश देकर कुछ विषयों से संबंधित विवरणों को अंकेक्षण रिपोर्ट में शामिल करा सकता है।

धारा 129 के अनुसार, कम्पनी के चिट्ठे और लाभ-हानि खाते में वे सभी **टिप्पणियाँ** (notes) और **प्रलेख** (Documents) भी सम्मिलित होते है जिनके द्वारा आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

(12) **धारा** 145 के अनुसार केवल वही व्यक्ति जो कम्पनी का अंकेक्षक नियुक्त हुआ है अथवा यदि धारा 226(1) के अनुसार एक फर्म की नियुक्ति हुई है तो भारत में प्रैक्टिस करने वाला उसका एक साझीदार हो, अंकेक्षण की रिपोर्ट अथवा दूसरे किसी प्रलेख पर हस्ताक्षर कर सकता है या उसे प्रमाणित कर सकता है। दूसरा कोई अन्य व्यक्ति हस्ताक्षर करने के योग्य नहीं है।

(13) यदि अंकेक्षक को चिट्ठे की तिथि के बाद किन्तु अपनी रिपोर्ट देने से पूर्व कुछ असाधारण लाभों या हानियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, तो उसे अपनी रिपोर्ट में उनका उल्लेख अवश्य कर देना चाहिए।

■ 4. सच्चा एवं उचित (True and Fair)

जब कम्पनी की **लेखा-पुस्तकें** (खाते) कम्पनी अधिनियम 1913 के अनुसार तैयार की जाती थी तो **'सच्चा और ठीक' (True and Correct)** शब्दो का प्रयोग किया जाता था, किन्तु अब कम्पनी अधिनियम 2013 के अतर्गत **'सच्चा और उचित' (True and Fair)** शब्दो का प्रयोग किया जाता है। इन शब्दो का स्पष्टीकरण अग्राकित है

ठीक (Correct) शब्द वास्तव मे गणितीय शुद्धता का प्रतीक है जबकि **उचित** (Fair) शब्द वास्तविक स्थिति का प्रतीक है। ठीक शब्द यह प्रकट करता है कि वित्तीय विवरण गणितीय दृष्टिकोण से ठीक है, किन्तु यह प्रकट नहीं करता था कि वित्तीय विवरण सस्था की वास्तविक स्थिति प्रकट करते है, किन्तु उचित शब्द से सस्था की उचित स्थिति प्रकट होती है। कम्पनी के अशधारियों का सबध इसकी वास्तविक स्थिति से होता है जिसकी पूर्ति उचित शब्द से होती है। अतः यदि सच्चा और उचित शब्दो का प्रयोग किया जाता है तो यह इस बात का प्रतीक माना जाता है कि (i) सस्था का लाभ-हानि खाता व चिट्ठा अधिनियम के अनुरूप बनाया गया है, (ii) सस्था के विवरण (चिट्ठा) दिखावटीपन तथा गुप्त सचय से मुक्त है, (iii) संस्था के खाते मे न तो **अतिविवरण** (over-stated) है और न ही **अल्प-विवरण** (under-stated) है।

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 के अतर्गत **'सच्चा एवं उचित'** शब्द का प्रयोग अंकेक्षक द्वारा अपनी रिपोर्ट मे करना होता है। अतः यह भी अनिवार्य है कि कम्पनी के वार्षिक खाते कम्पनी का सही एव उचित चित्रण करें।

खातों के विवरण सत्य एवं उचित है अथवा नहीं यह जानने के लिए अंकेक्षण को निम्नलिखित बातें देखनी होती है:

(i) कम्पनी के द्वारा उचित पुस्तकें रखी गयी है या नहीं;

(ii) कम्पनी द्वारा रखी गयी पुस्तकें व्यापार का सही एवं स्पष्ट चित्रण करती है या नहीं;

(iii) कम्पनी द्वारा **प्राप्य आय** (Receivable Income) प्राप्त कर ली गयी है या नहीं; यदि प्राप्त कर ली गयी है तो उसका लेखा भी सही किया गया है अथवा नहीं;

(iv) कम्पनी द्वारा किये गये सभी व्यय कम्पनी से हीसंबंधित है या नहीं तथा यह खर्चे उचित एवं अधिकृत है अथवा नहीं;

(v) पूंजीगत तथा आयगत आय-व्ययों को अलग-अलग रखा गया है या नहीं;

(vi) प्रबन्धकों तथा अधिकारियों द्वारा किये गये व्यय उचित थे अथवा नहीं;

(vii) ज्ञात एवं संदिग्ध दायित्वों के लिए उचित प्रावधान किया गया है या नहीं;

(viii) चल संपत्तियों का उचित मूल्यांकन किया गया है अथवा नहीं;

(ix) संपत्तियों का सही मूल्यांकन ही किया जाय, कम या अधिक नहीं;

(x) गत वर्ष की आय-व्यय की मदें इस वर्ष के लाभ-हानि खाते में यदि समयोजित की गयी हों तो उन्हें अलग से दिखाया जाना चाहिए;

(xi) कम्पनी का लाभ-हानि खाता एवं चिट्ठा तथा अन्य प्रपत्र कम्पनी विधान में वर्णित व्यवस्था के आधार पर बनाये गये है या नहीं।

अंकेक्षक कम्पनी के लाभ-हानि खाते व चिट्ठे की शत-प्रतिशत शुद्धता की गारण्टी तो नहीं देता है, वह तो इन पर केवल अपनी राय प्रकट करता है। अंकेक्षक यदि राय प्रकट करने में लापरवाही करता है तो उसे लापरवाही के लिए दोषी ठहराया जा सकता है।

■ 5. रिपोर्ट तैयार करते समय ध्यान देने योग्य बातें
(Matters to be Considered while Preparing Report)

एक अच्छी रिपोर्ट में निम्नलिखित बातों का समावेश होना चाहिए:

(i) रिपोर्ट की भाषा सरल एव साधारण होनी चाहिए।

(ii) रिपोर्ट **अनुच्छेदों** (paragraphs) में विभाजित होनी चाहिए।

(iii) यह उन व्यक्तियों के नाम सम्बोधित होनी चाहिए, जिनके लिए अंकेक्षण किया जा रहा है, जैसे एक कम्पनी की रिपोर्ट को सदस्यों को संबोधित करके लिखना चाहिए।

(iv) अंकेक्षक को तब तक कोई सलाह नहीं देनी चाहिए जब तक कि उससे सलाह मांगी न गई हो।

(v) रिपोर्ट लिखते समय अंकेक्षक को उन सभी कागज-पत्रों, विवरण-पत्रों एवं टिप्पणियों का सहारा लेना चाहिए जिनका प्रयोग उसने अंकेक्षण कार्य करते समय किया था।

(vi) **मर्यादित** (Qualified) रिपोर्ट में मर्यादाओं का उल्लेख पूर्णतया स्पष्ट होना चाहिए।

(vii) रिपोर्ट तथ्यों पर आधारित हो तथा कोई बात गोपनीय नहीं होनी चाहिए।

(viii) **रिपोर्ट पक्षपात रहित** (Impartial or unbiased) होनी चाहिए, तथा लेखा-पुस्तकों की गलतियों को स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए।

(ix) रिपोर्ट में की गई आलोचना किसी व्यक्ति विशेष को हानि पहुँचाने वाली न हो।

(x) रिपोर्ट बिना किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छोड़ते हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म लिखी जानी चाहिए।

(xi) रिपोर्ट में बहुअर्थी शब्दों का प्रयोग वांछनीय नहीं होता है।

अध्याय 13

अनुसंधान

(Investigation)

1. अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

अनुसंधान से आशय किसी संस्था के लेखों की विशेष एवं गहन जाँच से है जो किसी पूर्व-निश्चित उद्देश्य को लेकर की जाती है। अनुसंधान किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। यह न तो लेखाकार्य ही है और न ही अंकेक्षण। वास्तव में यह पुस्तकों के पीछे तथा व्यवहारों की तह तक की गई गहरी जाँच है। किसी व्यवसाय अथवा संगठन की तकनीकी, वित्तीय तथा आर्थिक स्थिति का पता लगाना भी इसमें शामिल है। इसमें केवल चिट्ठे एवं लाभ-हानि खाते की जाँच ही नहीं होती, बल्कि नियोक्ता के विशेष उद्देश्य से संबंधित सुचनाएँ भी प्राप्त करनी होती हैं। ऐसी जाँच का क्षेत्र निहित उद्देश्यों के आधार पर सीमित अथवा व्यापक हो सकता है। इसमें तथ्यों की जाँच इस प्रकार की जाती है कि किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचा जा सके।

अनुसंधान को विशेष अंकेक्षण भी कहा जा सकता है अनुसंधान की विभिन्न परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं:

स्पाइसर व पैगलर के अनुसार, **''अनुसंधान शब्द से तात्पर्य किसी विशेष उद्देश्य से किए गए खातों के निरीक्षण से है।''** (''The term 'investigation' implies an examination of the accounts of a business for some special purpose.''- **Spicer and Peglar**)

लंकास्टर के अनुसार, **''अनुसंधान के क्षेत्र से संबंधित तथ्यों की सही स्थिति के स्पष्टीकरण के लिये व्यवसाय के खातों की जाँच-पड़ताल एवं परीक्षण को अनुसंधान कहते हैं।''** (''An Investigation may be defined as an examination of and enquiry into the accounts of a business with a view to disclosing the true position of affaris in relation to the special matters falling within the scope of the investigation.'' - **Lancaster**)

बी. चक्रवर्ती के अनुसार, ''किसी विशेष उद्देश्य के लिए एक व्यावसायिक संस्था के खातों का पूर्ण निरीक्षण जिससे कि सही स्थिति का पता लग सके अनुसंधान कहलाता है।'' (''An investigation may be defined as a thorough examination of accounts of a business concern with a view to ascertain the true position for some special object.'' **-B. Chakarvarti.**)

उपरोक्त परिभाषाएँ अनुसंधान की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट करती हैं:

(i) अनुसंधान एक खोजबीन वाली गहन जाँच है।

(ii) इसमें लेखा-पुस्तकों एवं प्रपत्रों के अतिरिक्त अन्य विषयों की भी जाँच की जाती है।

(iii) यह सदैव किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती है।

(iv) इसमें संस्था की तकनीकी, वित्तीय तथा आर्थिक स्थिति पता लगाना शामिल है।

(v) इसके अंतर्गत प्रायः सन्देहात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता है।

(vi) इसमें किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचने हेतु तथ्यों को क्रमबद्ध ढंग से प्रदर्शित किया जाता है।

(vii) इसका कार्यक्षेत्र किसी पूर्व-निश्चित उद्देश्य के अनुसार व्यापक अथवा सीमित हो सकता है।

■ 2. अंकेक्षण तथा अनुसंधान में अंतर (Difference between Auditing and Investigation)

कुछ व्यक्ति अंकेक्षण और अनुसंधान में कोई अंतर नहीं करते। वे समझते है कि दोनों समानार्थी शब्द है, परंतु यह बात ठीक नहीं है। इन दोनों में बड़ा अंतर है जो निम्न तालिका के आधार पर सरलता से समझा जा सकता है :

क्रम संख्या (S. No.)	अंतर का आधार (Basis of Difference)	अंकेक्षण (Audit)	अनुसंधान (Investigation)
1.	जाँच का स्वरुप (Nature of enquiry)	अंकेक्षण में आंतरिक नियंत्रण की समुचित व्यवस्था होने पर परीक्षण जांच (Test Checking) का सहारा लिया जा सकता है।	अनुसंधान में तथ्यों की गहरी जाँच करनी होती है। इसमें परीक्षण जाँच (Test Checking) से काम नहीं चलता है।
2.	कार्यक्षेत्र (Scope)	अंकेक्षण का क्षेत्र सीमित होता है। इसमें सूचनाओं एवं स्पष्टीकरणों का आधार केवल उपलब्ध प्रमाणक, प्रलेख एवं लेखा- पुस्तकें ही रहती हैं।	अनुसंधान का क्षेत्र विस्तृत होता है। इसमें लेखा-पुस्तकों के अतिरिक्त संस्था के बाहर भी सूचनाएँ एवं स्पष्टीकरण प्राप्त किए जा सकते हैं।
3.	उद्देश्य (Object)	अंकेक्षण का उद्देश्य सामान्यतः खातों की शुद्धता, पूर्णता व नियमानुकूलता का पता लगाना होता है।	अनुसंधान किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए कराया जाता है यद्यपि परिस्थितियों के अनुसार इसके उद्देश्य भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।
4.	किसकी ओर से (On whose behalf)	अंकेक्षण केवल व्यापार के स्वामियों द्वारा ही कराया जा सकता है, जैसे कम्पनी के अंशधारी, फर्म के साझेदार आदि।	अनुसंधान संस्था के मालिक के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा भी कराया जा सकता है, जैसे भावी क्रेता, भावी विनियोजक, प्रवेश करने वाला साझेदार, बीमा कम्पनी आदि।
5.	अवधि (Period)	अंकेक्षण की अवधि निश्चित होती है और साधारणतया एक वर्ष या छह महीने होती है।	अनुसंधान की अवधि अंकेक्षक की अवधि से लम्बी होती है प्रायः यह तीन से सात वर्ष तक की होती है।
6.	अनिवार्यता (Compulsion)	कम्पनी के लिए अंकेक्षण एक वैधानिक अनिवार्यता है और यह प्रतिवर्ष कराना आवश्यक होता है।	अनुसंधान कुछ विशेष परिस्थितियों को छाअंतर वैधानिक दृष्टि में अनिवार्य नहीं है। यह किसी मुख्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यकता पड़ने पर कराया जाता है।

7.	योग्यता (Qualifications)	कम्पनी अंकेक्षक के लिए चार्टर्ड एकाउंटेंट होना एक वैधानिक अनिवार्यता है।	अनुसंधानकर्ता का चार्टर्ड एकाउंटेंट होना आवश्यक नहीं है। प्राय: योग्य एवं अनुभवी लेखापाल को ही अनुसंधान कार्य सौंपा जाता है।
8.	उपयोगिता (Utility)	अंकेक्षण के निष्कर्षों का प्राय: व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।	अनुसंधानकर्ता के निष्कर्षों से केवल नियोक्ता ही लाभान्वित होता है।
9.	दृष्टिकोण (Attitude)	अंकेक्षक एक रखवाली करने वाले कुत्ते के समान कार्य करता है। उसका दृष्टिकोण त्रुटियों एवं अनियमितताओं का सुधार करना होता है।	अनुसंधानकर्ता अपना कार्य शिकारी कुत्ते की भाँति करता है। उसका दृष्टिकोण संदेहात्मक तथा अलोचनात्मक रहता है।
10.	स्थिति (Position)	अंकेक्षण आंशिक (Partial) भी हो सकता है।	अनुसंधान कभी भी आंशिक (Partial) नहीं होता।
11.	आरम्भ (Start)	अंकेक्षण प्रारंभ करने से पहले लेखा-पुस्तकों का पूर्ण रूप से तैयार होना आवश्यक है। अत: यह वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर ही किया जाता है।	अनुसंधानकर्ता की दृष्टि से घटनाओं का हो चुकना महत्व की बात है, लेखा-पुस्तकें तैयार हों या नहीं इसका कोई अंतर नहीं पड़ता।
12.	रिपोर्ट (Report)	अंकेक्षक को अपनी रिपोर्ट अधिनियम के अनुसार तैयार करनी होती है।	अनुसंधानकर्ता को अपनी रिपोर्ट किसी विशेष अधिनियम के अनुसार तैयार न करके अनुसंधान की प्रकृति के अनुसार तैयार करनी होती है।
13.	आलोचना (Criticism)	इसमें कार्य आलोचनात्मक विधि से किया जाता है तथा रिपोर्ट मे त्रुटियों पर भी ध्यान केन्द्रित किया जाता है।	इसमें केवल उन बातों का उल्लेख किया जाता है जिनसे अंकेक्षक सहमत नहीं है। कोई आलोचना नहीं की जाती।

■ 3. जाँच-पड़ताल तथा अनुसंधान (Inquiry and Investigation)

सन् 1965 में भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 में एक नई धारा 227(IA) जाअंतर प्रत्येक कम्पनी अंकेक्षक के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वह अपने अंकेक्षण के दौरान कम्पनी के कुछ निर्धारित व्यवहारों के संबंध में जांच-पड़ताल करे। अत: जांच-पड़ताल करना प्रत्येक अंकेक्षक का वैधानिक कर्तव्य हो गया है। किन्तु कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 210 के अंतर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुसंधान उसी दशा में कराया जा सकता है जबकि उस कम्पनी के संबंध में गम्भीर गड़बड़ी और अनियमितताओं की आंशका हो। इस कार्य के लिए जिस व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है उसे **निरीक्षक** (Inspector) कहते है। यह एक नियमित कार्य है जबकि अनुसंधान एक नियमित कार्य नहीं होता। कम्पनी अंकेक्षक का यह कर्तव्य होता है कि वह सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षक की हर संभव सहायता करे। अनुसंधानकर्ता का ऐसा कोई कर्तव्य नहीं होता है।

■ 4. अनुसंधान की आवश्यकता (Necessity of Investigation)

अनुसंधान विभिन्न कारणों से कराया जाता है, जिन सबका वर्णन करना कठिन है। कुछ प्रमुख कारण जिनके लिए अनुसंधान कराया जाता है, अग्रलिखित हैं:

(1) किसी व्यापार अथवा कम्पनी के अंशों को क्रय करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति द्वारा उस व्यवसाय की उपार्जन-क्षमता का पता लगाने के उद्देश्य से हिसाब-किताब की जांच-पड़ताल करायी जाती है।

(2) किसी साझेदारी में प्रवेश पाने का इच्छुक व्यक्ति उस व्यवसाय का अनुसंधान करा सकता है।

(3) किसी बैंक अथवा ऋणदाता की ओर से ऋण के उद्देश्य एवं प्रतिभूतियों के मूल्य का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुसंधान कराया जाता है।

(4) किसी व्यवसाय में विनियोग करने की इच्छा के उद्देश्य से भी उस व्यवसाय का अनुसंधान कराया जा सकता है।

(5) कम्पनी अधिनियम की धारा 210 एवं 213 के अंतर्गत किसी कम्पनी के कुप्रबन्ध का आरोप होने पर सरकार द्वारा उसका अनुसंधान कराया जा सकता है।

(6) **कर अधिकारियों** (Taxation Authorities) द्वारा कर योग्य लाभों के सही निर्धारण के लिए भी अनुसंधान का उपयोग किया जाता है।

(7) कम्पनी के दिवालिया होने की आशंका होने पर ऋणदाता अनुसंधान करा सकते हैं।

(8) व्यवसाय के अनिवार्य रूप से हटाये जाने के संबंध में देय **मुआवजे** (Compensation) का पता लगाने के लिए भी अनुसंधान कराया जाता है।

(9) परिणाम-जन्य हानियों की पूर्ति के बीमें संबंधी दावों के लिए भी हिसाब-किताब की जांच करायी जाती है।

(10) अंकेक्षकों की अयोग्यता अथवा लापरवाही का पता लगाने के उद्देश्य से भी अनुसंधान कराया जाता है।

(11) शिकायत होने अथवा अन्य किसी असाधारण स्थिति के उत्पन्न होने पर सरकार द्वारा अनुसंधान कराया जाता है।

■ 5. अनुसंधान करते समय आवश्यक सावधानियाँ (Essential Precautions in the Conduct of Investigation)

अथवा (Or)

अनुसंधान की कार्य विधि (Procedure of Investigation)

अनुसंधान की कोई निश्चित कार्यविधि नहीं हो सकती क्योंकि विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किए गए अनुसंधान की कार्यविधि उन उद्देश्यों के अनुरूप भिन्न-भिन्न होगी। फिर भी, अनुसंधान करते समय निम्न बातें ध्यान में रखी जानी चाहिए:

(1) अनुसंधान का उद्देश्य (Object of Investigation): अनुसंधान प्रारम्भ करने से पूर्व नियोक्ता से स्पष्ट रूप से इस बात की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए कि अनुसंधान का उद्देश्य क्या है? इस संबंध में नियोक्ता से लिखित निर्देश प्राप्त कर लेने चाहिएं तथा नियोक्ता द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों को भी देखना चाहिए।

(2) व्यवसाय की प्रकृति (Nature of the Business) - अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व व्यवसाय की प्रकृति का अध्ययन कर लेना चाहिए, ताकि व्यवसाय की कार्य-प्रणाली, आंतरिक जांच एवं नियंत्रण प्रणाली तथा लेखांकन पद्धति के संबंध में जानकारी हो सके।

(3) अवधि का निर्धारण (Determination of Period): अनुसंधान का कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि कितने वर्षों के खातों का अनुसंधान किया जायेगा। वस्तुतः अवधि का निर्धारण अनुसंधान के उद्देश्य तथा आपसी समझौते पर निर्भर करता है। यदि व्यापक उद्देश्य से अनुसंधान करवाया जाता है, तो अवधि लम्बी होगी, इसके विपरीत अवधि कम होगी।

(4) **अनुसंधान का कार्यक्षेत्र** (Sphere of Investigation): अनुसंधान के कार्य-क्षेत्र का निर्धारण करते समय अनुसंधान के स्वरूप एवं विस्तृता, अनुसंधान की अवधि, व्यापार की प्रकृति, बही-खाता विधि एव आंतरिक निरीक्षण प्रणाली की विश्वसनीयता को ध्यान में रखना चाहिए।

(5) **विशेषज्ञों की सलाह** (Opinion of Experts): आवश्यकतानुसार विशेषज्ञों की सलाह ले लेनी चाहिए। यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि किन-किन बिन्दुओं (तथ्यों) पर विशेषज्ञों की सलाह लेनी है। उदाहरणतः रहतिये के मूल्यांकन तथा सम्पत्तियों के मूल्यांकन के संबंध में विशेषज्ञों की सलाह ली जा सकती है।

(6) **अंकेक्षक से सम्पर्क** (Contact with Auditor): अनुसंधान की प्रक्रिया के क्रम में अंकेक्षक की रिपोर्ट की भी आवश्यकता पड़ती है। यदि अंकेक्षण में कहीं कठिनाई महसूस हो तो, अंकेक्षक से सम्पर्क स्थापित कर या पत्र-व्यवहार करके तथ्य का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

(7) **लेखों की शुद्धता जाँचना** (To Check Accuracy of Accounts): पिछले वर्षों के लेखों की छानबीन कर उन्हें इस वर्ष के लेखों से मिलाना चाहिए। इसी प्रकार पिछली अंकेक्षण रिपोर्ट भी देखनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर उसे बही-खातों के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से भी सूचनाएं प्राप्त करने में हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिए।

(8) **चिन्हों का प्रयोग** (Use of Signs): अनुसंधान करते समय आवश्यकतानुसार खातों को चिन्हित करना चाहिए किन्तु चिन्हों का प्रयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। ऐसा न हो कि खाते चिन्हित होने से विकृत हो जाएँ।

(9) **उचित कार्यविधि** (Proper Work Procedure): अनुसंधान का कार्य सुव्यवस्थित कार्यविधि से किया जाना चाहिए तथा संबंधित आवश्यक कागज-पत्रों को अपने पास सुरक्षति रखना चाहिए। यह सावधानी उस समय और भी आवश्यक हो जाती है जब अनुसंधान न्यायालय द्वारा कराया जाता है। लापरवाही का दोष लगने पर इन कागज-पत्रों को **साक्ष्य** (Evidence) के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(10) **निष्पक्ष जाँच** (Impartial Checking): अनुसंधान कार्य निष्पक्ष रूप से तथा पूर्ण सतर्कता एवं ईमानदारी से किया जाना चाहिए तथा इस संबंध में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी अधिकारी से प्रभावित नहीं होना चाहिए।

(11) **गोपनीयता** (Secrecy): अनुसंधान की कार्य पद्धति ऐसी होनी चाहिए जिसमें गोपनीयता निहित हो। परंतु किसी भी तरह अनुसंधान कार्य को सन्देहास्पद (Suspicious) बनाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

(12) **रिपोर्ट** (Report): अनुसंधान कार्य समाप्त करने के पश्चात् इसकी रिपोर्ट नियोक्ता को देनी होती है। रिपोर्ट लिखने का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः इसे लिखते समय पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए। इसमें सभी आवश्यक तथा महत्वपूर्ण विवरणों का उल्लेख होना चाहिए। रिपोर्ट देते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिएः

(i) अनुसंधान कार्य समाप्त होते ही रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए।

(ii) रिपोर्ट स्पष्ट लिखी हुई होनी चाहिए।

(iii) रिपोर्ट लिखते समय समस्त प्राप्त टिप्पणियों, सूचनाओं तथा स्पष्टीकरणों का प्रयोग करना चाहिए।

(iv) रिपोर्ट में अनुसंधान का कार्यक्षेत्र व अवधि का भी वर्णन किया जाना चाहिए।

(v) रिपोर्ट द्वारा नियोक्ता को वे सभी सूचनाएं प्राप्त हो जानी चाहिए जो नियोक्ता चाहता हो।

(vi) रिपोर्ट में सांख्यिकी का प्रयोग करके तुलनात्मक सारणियाँ भी देनी चाहिए।

(vii) कोई ऐसी बात रिपोर्ट में नहीं लिखी जानी चाहिए जो कि एक भविष्यवाणी के रूप में हो।

(viii) यदि कोई सम्पत्ति पट्टे पर ली गयी है तो रिपोर्ट में इसकी अवधि का भी जिक्र होना चाहिए।

(ix) अपने उत्तरदायित्व से बचने के लिए रिपोर्ट में विशेषज्ञों की रिपोर्ट का भी उल्लेख करना चाहिए तथा उनको अपनी रिपोर्ट के साथ नत्थी कर देना चाहिए।